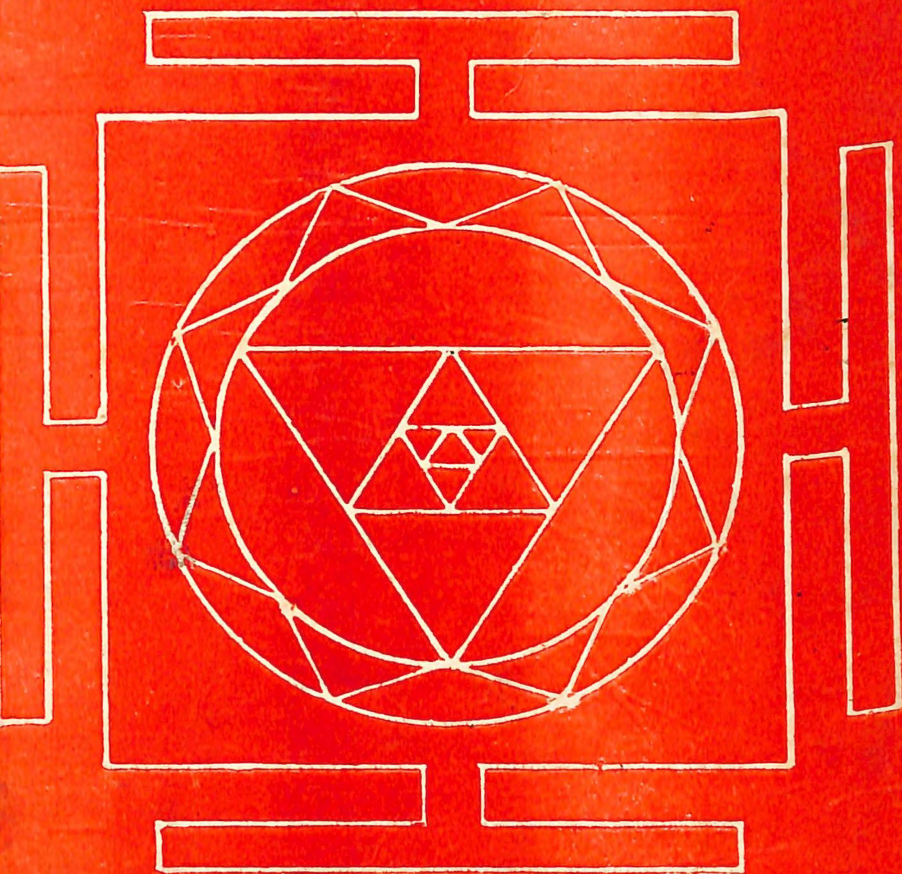
तन्त्र साधना सार



देवदत्त शास्त्री

तन्त्र-साधना सार

पं० देवदत्त शास्त्री

श्री गणेश प्रकाशन मन्दिर
१२४, शहरारा बाग, इलाहाबाद

प्रकाशक	श्री गणेश प्रकाशन मन्दिर १२४, शहरारा बाग, इलाहाबाद।
संस्करण	१९९७
मूल्य	पचास रूपये
एक मात्र वितरक	एम० एम० पब्लिकेशन ४९७ डी०, स्मिथ रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक	इण्डिका, इलाहाबाद। ६०४७१३

आमुख

'तंत्र सिद्धान्त और साधना' ग्रंथ प्रकाशित होने पर उसकी उपयोगिता और आवश्यकता से संबंधित लगातार सहस्रों पत्र मुझे मिले। साथ ही जिज्ञासु साधकों ने पत्र लिखकर अपनी जिज्ञासाएँ और शंकाएँ भी प्रकट कीं। तंत्रविषयक जिज्ञासाएँ इतनी अधिक मात्रा में मुझे प्राप्त हुईं कि मेरे लिए यह अनिवार्य हो गया कि पाठकों एवं साधकों के निमित्त एक ऐसा तंत्र-ग्रंथ लिखा जाए जो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय हो। सामान्य व्यक्ति भी तंत्र शास्त्र के रहस्य को आसानी से समझकर अभीष्ट साधना पूरी कर सके। तदनुसार प्रस्तुत ग्रंथ तंत्रसाधनासार का प्रकाशन संभव हुआ।

इस ग्रंथ में तंत्र विज्ञान, तांत्रिक योग-साधना, तांत्रिक संस्कृति, मंत्र साधना, शाक्तमंत्र और उनकी साधना, विविध मंत्र-यंत्र साधना, शाबर मंत्र साधना, आथर्वणतंत्र साधना और लोक-जीवन में व्यवहृत होने वाले तांत्रिक प्रयोगों का समावेश है। ये विषय सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हैं और साधना के सभी विषय स्वानुभूत हैं।

प्रकाशक महोदय की विशेषरुचि एवं आकांक्षा का ध्यान रखते हुए तंत्र जैसे गंभीर-गहन विषय को लोकोपयोगी बनाने का यथासाध्य प्रयास किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में भी पाठ्यक्रम के रूप में यह ग्रंथ अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकेगा, ऐसा विश्वास है।

८४, नया बैरहना
इलाहाबाद-२११००३

देवदत्त शास्त्री

श्री काली वन्दना

मृत्युरूपा मा आमार आय ।
करालि ! कराल तोर नाम, मृत्यु तोर निःश्वासे श्वासे;
तोर भीमचरण निक्षेप प्रतिपदे ब्रह्माण्ड विनाशे !
कालि ! तूइ प्रलयरूपिणी, आय मागो; आय मोर पाशे ।
साहसे ये दुःख दैन्य चाप, मृत्युरे ये बाधे बाहुपाशे,
काल-नृत्य करे उपभोग, मृत्युरूपा तारि काछे आसे ।

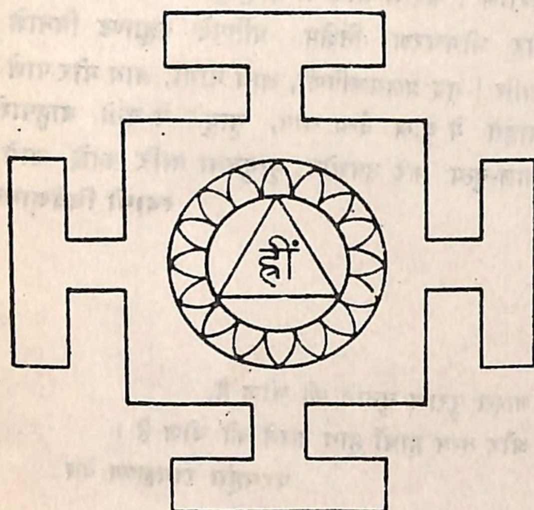
स्वामी विवेकानन्द

शास्त्र पुराण सुनाने की चीज हैं,
और तन्त्र हाथों हाथ करने की चीज है ।

परमहंस रामकृष्ण देव

सर्वे चैतन्यरूपामाद्यांविद्यां च धीमहि ।
तन्नो शक्तिः प्रचोदयात् ॥

हम उस सर्व चैतन्यमयी आद्या विद्या का ध्यान करते हैं । वह महाशक्ति हमें अपनी शक्ति प्रदान कर शक्तिशाली बनाए ।


ह्रीं

अनुक्रम

१ | तंत्र-विज्ञान

'तंत्र' शब्द बहुमुखी और व्यापक अर्थ रखता है। तंत्र में 'तन्' और 'त्र' दो शब्द हैं। 'तन्' का अर्थ विस्तार है और 'त्र' का अर्थ त्राण-(रक्षा) करना है। जो तत्त्व और मंत्र के विपुल अर्थ का विस्तार है और त्राण करता है, वह तंत्र है।

तंत्र शब्द का पारिभाषिक अर्थ विज्ञान है। तंत्र ही विज्ञान है और विज्ञान ही तंत्र है। जिस प्रकार ज्ञान और विज्ञान का कोई अन्त नहीं है, उसी प्रकार तंत्र भी ओर-छोर रहित है। जैसे वेद और वेदशास्त्र में, योग और योगशास्त्र में अन्तर रहता है, उसी प्रकार तंत्र और तंत्र शास्त्र में भी भेद है। मंत्र और यंत्र शक्ति से कार्य करने का उपाय 'तंत्र' है और तंत्र की पद्धतियाँ बताने वाला शास्त्र 'तंत्रशास्त्र' है।

तंत्र एक प्रक्रिया है। तंत्र-प्रक्रिया द्वारा बाह्य तंत्रों से निकलते हुए श्वास का अवरोध कर उस पर अधिकार किया जाता है। तंत्रशास्त्र का मूल

उद्गम आगम हैं। आगम-शास्त्र का कहना है कि 'अनिच्छा और इच्छा-रूप जो दो नाड़ियाँ हैं, वही नियम और आगम हैं जब अनिच्छारूप नाड़ी पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है, तो उस स्थिति का नाम 'योग' है और अनिच्छा तथा इच्छा का जो सम्मिलित रूप होता है, उसे 'तंत्र' कहा जाता है।

मंत्र के माध्यम से साधना और उपासना द्वारा अपने इष्ट का साक्षात्कार करना अथवा उससे तादात्म्य संबंध जोड़ना 'मंत्रयोग' है। .त्रयोग की साधना से सिद्धि प्राप्त होती है। मंत्र-साधना या तंत्र-साधना का योग से समवाय संबंध रहता है। योग मुख्यतया चार प्रकार का है—

१. हठयोग, २. राजयोग, ३. लययोग और ४. मंत्रयोग। तंत्र-साधना बिना योग के संभव नहीं है। योगरहित साधना से सिद्धि नहीं प्राप्त होती है।

अधिकांश लोग **मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, वशीकरण, विद्वेषण**—इन षट्कर्मों को तथा जादूगरी, चमत्कार को ही तंत्र विद्या समझते हैं। कुछ लोगों को यह भ्रम है कि तंत्र-साधना में **मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य, मुद्रा**—पञ्चमकार का सेवन किया जाता है, इसलिए ऐसे लोग तंत्र-विद्या से घृणा करते हैं।

इस प्रकार सोचना और समझना उन लोगों के लिए स्वाभाविक है, जिन्होंने न तो स्वयं तंत्रविद्या का अध्ययन किया है और न किसी तंत्रविद् से समाधान या बोध प्राप्त किया है। तंत्रविद्या को जादूगरी, बाजीगरी और चमत्कार की विद्या समझने वाले भी दोषी नहीं हैं, क्योंकि तंत्र-विद्या लुप्त होती जा रही है, उसके गुह्य, गोपनीय रहस्य अंधेरी गुफा में निहित हैं। तंत्र और मंत्र के नाम पर एक व्यापक व्यवसाय चल पड़ा है। जादूगरी, बाजीगरी, हाथ की सफाई के चमत्कार को ही सिद्धि बतला-कर भ्रान्ति उत्पन्न की जा रही है यद्यपि तंत्रविद्या, रहस्यविद्या के ज्ञाताओं और साधना सम्पन्न सिद्धों, योगियों की कमी अब भी नहीं है,

किन्तु देश, काल के अनुसार वस्तुतत्त्व-विवेक के प्रचार-प्रसार की कमी है॥

आम्नायविद्या के **डामर, यामल** और **आगम** तीन भेद हैं। डामर तंत्र में **मारण, मोहन,** उच्चाटन आदि षट्कर्मों के प्रयोग हैं, जिनका परिगणन साधना के अन्तर्गत नहीं किया जाता है। यामल और आगम योग शक्ति और मंत्र शक्ति प्रधान हैं। इनमें साधना ही मुख्य है। योग-साधना और मंत्र-साधना द्वारा साधक कुण्डलिनी जाग्रत कर जीवन्मुक्त बन जाता है।

मंत्र-साधना के दो उद्देश्य हैं—१. **विश्व-विज्ञान,** २. **सांसारिक बन्धनों से मुक्ति।** मंत्र शब्द का अर्थ ही है—जो मनन, चिन्तन द्वारा वैश्विक ज्ञान करा कर सांसारिक बन्धनों से छुटकारा दिलाता है—**मननात् विश्व विज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।**

प्रणव, बीज, कूटाक्षर, पल्लव आदि मंत्र के अंग हैं। हर मंत्रमें इन्हें अथवा इनमेंसे किसी एक का संयोजन किया जाता है। जैसे मंत्र के अंग होते हैं, वैसे ही मंत्र के तत्त्व होते हैं। मंत्र-साधना करते-समय जो विशिष्ट प्रकार के ध्यान किए जाते हैं तथा शक्ति, गति, क्रिया-शीलता उत्पन्न करने के लिए जो न्यासादि कर्म किए जाते हैं, वे मंत्र के सूक्ष्म तत्त्व हैं। मंत्र साधना एक व्यवस्थित विधान के अन्तर्गत की जाती है, उस विधान में आलस्य, उपेक्षा, नियम-भंग, स्वेच्छाचारिता आदि विघ्न उत्पन्न करने वाले दोषों का कोई स्थान नहीं है। तांत्रिक-साधना से तभी सिद्धि प्राप्त होती है, जब साधक संयम, नियम, सदाचरण, अनुशासन-सम्पन्न होकर साधना करता है। प्रायः देखा जाता है, कि लोग जीवन भर साधनारत रहते हुए भी सिद्धि के द्वार तक भी नहीं पहुँच पाते हैं। इसका कारण यम-नियम पालन करने में लापरवाही है किन्तु सिद्धि न मिलने का एक और कारण जन्मान्तर के दोष हैं। पूर्वजन्म के संस्कारगत दोषों का निराकरण जब तक नहीं किया जाएगा तब तक सिद्धि नहीं मिलती है, वह खण्डित अथवा विफल हो जाती है।

तन्त्र-विद्या के छह आम्नाय

जितने भी तन्त्र, मन्त्र हैं, उन सब के मूलस्रोत आगम हैं। आगम को आम्नाय भी कहा जाता है। जिन छह आम्नायों से तन्त्र-विद्या उत्पन्न हुई है। उन छहों को मिलाकर **'आम्नायषट्क'** कहा जाता है। तन्त्र विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक प्रतीकात्मक कथा है पञ्च वक्त्र (पञ्चमुख) भगवान् शिव ने अपने पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्वमुख से जिन मन्त्रों का उपदेश दिया है, उन्हें उपासना कर्म में, **पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय** और **उर्ध्वाम्नाय** कहा जाता है। पञ्चमुख शिव के अधोमुख से जो मन्त्रोपदेश प्राप्त हुआ, वह **अधराम्नाय** कहा जाता है। इस तरह तन्त्र-विद्या के मूल स्रोत ये छह आम्नाय **'आम्नाय षट्क'** नाम से विख्यात हैं। आम्नायषट्क में से पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के योग से **आग्नेयाम्नाय** और उत्तराम्नाय के योग से **वायव्याम्नाय** तथा उत्तराम्नाय एवं पूर्वाम्नाय के योग से **ऐशाम्नाय** का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार तन्त्र-विद्या के दस आम्नाय प्रसिद्ध हैं। इन्हीं आम्नायों के अन्तर्गत तन्त्र-साधना का विस्तृत विधान मिलता है।

तन्त्र-साधना में नाद की प्रधानता

जैसे वेदों को अपौरुषेय माना जाता है, उसी प्रकार आगम भी अपौरुषेय हैं, तात्पर्य यह कि वेदों की भाँति आगम भी ईश्वरीय वाणी हैं किसी मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं हैं। आगमों का उपदेश भगवान् शिव से प्राप्त हुआ है। जैसे मन्द्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित वैदिक ऋचाएँ समस्त ब्रह्माण्ड में गूँजती रहती हैं, उसी प्रकार आगम ऋचाएँ भी ब्रह्माण्ड में गूँजा करती हैं। गूँजती हुई ऋचाओं को ध्यानावस्थित ऋषियों ने श्रवण द्वारा ग्रहणकर प्रकट किया—प्राप्त किया। ऋषियों ने ब्रह्माण्ड में गूँजती हुई ऋचाओं को सुनने के लिए तपस्या द्वारा श्रवण-दिव्यता प्राप्त की थी। तन्त्र-शास्त्र का कहना है कि श्रोतों (कानों) में दिव्यता

का आविर्भाव वहिर्वृत्तिजन्य एवं अन्तर्वृत्तिजन्य—इन दो साधनों से होती है। वहिर्वृत्तिजन्य आधार **नादब्रह्म** की उपासना है। निरन्तर नादब्रह्म की उपासना करते रहने से इन्द्रियों की वासनाएँ मिट जाती हैं—

सदानादानुसन्धानात् संक्षीणा वासनाभवेत् ।

नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है। वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्त ध्वनि में महती शक्ति रहती है। इसका खुलासा हमें अथर्ववेद (१०/७/२१) के इस कथन से मिलता है—'जो स्तम्भरूप ब्रह्म की असत् और सत्—इन दो शाखाओं का निरूपण करता है।' अथर्ववेद असत् शाखा को परमशाखा मानता है, जिससे 'बृहन्त' नामक देव पैदा होते हैं और दूसरी सत् शाखा अवर शाखा है।

आधुनिक विज्ञान असत् को शक्ति (एनर्जी) और सत् को निष्क्रिय तत्त्व (मैटर) मानता है। एक गति को सूचित करता है, दूसरा स्थिति को। सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है, वह रूप वाला है, किन्तु निष्क्रिय है।

तंत्र-विज्ञान और आधुनिक विज्ञान

ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा परोक्ष-ज्ञान (काल्पनिक) प्रत्यक्ष ज्ञान से यथार्थ का बोध होता है। और परोक्ष ज्ञान पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से सत्य भी हो सकता है और असत्य भी हो सकता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार काल्पनिक ज्ञान होता है। आधुनिक जीवविज्ञान, रसायनविज्ञान, भूतविज्ञान (फिजिक्स) आदि इसके उदाहरण हैं। जैसे फिजिक्स का ज्ञाता इस विषय को समझता है, कि किस प्रकार विज्ञान के प्रत्येक विभाग में सत् तात्कालिक ज्ञान से कल्पना कर अनुसंधान द्वारा अनुमान को सिद्धान्त बना लिया गया है।

तंत्र विज्ञान का मत है कि एक बिन्दु (·) से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इसी का समर्थन अब कुछ दिनों में आधुनिक विज्ञान भी करने लगा है। बेलजियम के कास्मोलाजिस्ट श्री ओवेलेन ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि—'एक महत् आदि बिन्दु फटने से यह विश्व बना है, जैसा कि हम देखते हैं।'

ओवेलेन के इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए अमेरिका के वैज्ञानिक जार्ज गामो ने कहा है कि—'किस प्रकार विश्व-रचना में पूर्ण अवर्णनीय ज्वाला से सभी विश्व-निर्माणकारक तत्त्व समूह बने। इस महती ज्वाला में अणु क्या परमाणुओं का भी पता नहीं था। केवल एक प्रकार के स्वच्छन्द विद्युत्कण (न्यूट्रोन) की धारा का प्रवाह था'।

तंत्र-विज्ञान के अनुसार 'गामो' द्वारा प्रतिपादित महाज्वाला की तुलना हमारे वर्तमान ब्रह्माण्ड के सौरमण्डल की अन्तर्ज्वाला से नहीं की जा सकती, क्योंकि हमारे सूर्य की अन्तर्ज्वाला का तापमान केवल चार करोड़ डिग्री है और विश्व की उत्पत्ति से पूर्व के तापमान का तो अनुमान ही नहीं किया जा सकता है, जिसकी गर्मी अरबों वर्षों बाद जब कुछ शान्त हुई तब सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र बने। तंत्र शास्त्र में उस कल्पनातीत महाज्वाला को **'कोटिसूर्य प्रकाशआद्याशक्ति'** कहा गया है। उस समय वह आद्याशक्ति अकेली थी। दिशाएँ, दिक् शक्ति और सदाशिव प्रेत हो रहे थे और काल शक्ति एवं महाकाल स्तब्ध पड़े हुए थे।

तंत्र शास्त्र के 'अवष्टभ्य पद्भ्यां शिवं भैरवंच' इस कथन का निरूपण आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में इस प्रकार किया जा सकता है——

आद्या शक्ति = इनर्जी क्वाण्टा

आदि अवस्था महाप्रलय = मैक्सिमम एण्ट्रोपी।

आदि अवस्था की दो प्रधान शक्तियाँ { सदाशिव = ग्रेमिटेशन या पावर आफ कन्फिगरेशन। महाकाल = एलेक्ट्रोमैग्नेटिज्म। }

तंत्र विज्ञान आद्याशक्ति महाकाली का वर्ण कृष्ण (काला) बतलाता है। 'इनर्जी क्वाण्टा' की इस विशिष्ट अवस्था में विश्व घोर अन्धकार में डूबा रहता है। प्रकाश शक्ति उस समय निष्क्रिय रहती है। एक लाख छियासी हजार दो सौ चौरासी मील प्रति सेकेण्ड गति वाली प्रकाश-शक्ति उस समय सिकुड़ी, सिमटी रहती है, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, नक्षत्रों का कुछ अता-पता नहीं रहता है।

इस 'इनर्जी क्वाण्टा' का प्रतीक जिस प्रकार तंत्र-विद्या में 'विन्दु' (·) माना गया है, उसी प्रकार अब आधुनिक विज्ञान भी मानने लगा है। विन्दु केन्द्र का प्रतीक है, इससे अधिक इसके सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान अभी तक कुछ नहीं जान पाया है। विन्दु अपने रूप में अलक्ष्य है। इसलिए अव्यवहार्य होने के कारण अव्यक्त कहा जाता है। अव्यक्त विन्दु की अभिव्यक्ति का जो क्रम आधुनिक विज्ञान बताता है, ठीक वही क्रम तंत्र विज्ञान में भी बताया गया है।

विन्दु की पहली व्यक्त अवस्था है त्रिकोण △ इस त्रिकोण में 'दिक्' (स्पेस) के तीन 'डाइमेन्शन' और एक काल 'डाइमेन्शन' परस्पर नित्य सम्बद्ध हैं। एक ही त्रिकोण नहीं बनता है, बल्कि अनेक त्रिकोण इसलिए बनते हैं कि सभी प्रकार की गति-शक्तियों का मूल 'एलेक्ट्रोमेग्नेटिज्म' विविध प्रकार की गति लेता है। उसकी विभिन्न प्रकार की गतियों के ग्रहण से विविध त्रिकोण बनते हैं। विश्वरूपिणी षोडशी के 'श्रीयंत्र' में यही सिद्धान्त निहित है। आद्या के यंत्र में केवल पाँच त्रिकोण हैं—इसलिए कि वह आदि अवस्था का बोधक है। आदि में आकाश व वाष्प (वेपर) ही 'दिक्' (स्पेस) में था। इसके बाद वायु हुआ। वायु ने अपनी एक प्रकार की गति से अग्नि तत्त्व (गर्मी) उत्पन्न किया। अग्नि तत्त्व ने जल तत्त्व या द्रव (लिक्विड) तत्त्व उत्पन्न किया। जल तत्त्व की गर्मी पर्याप्त मात्रा में कम होने पर पृथ्वी या ठोस पदार्थ बना। करोड़ों, अरबों वर्षों तक यह दशा रहने के बाद दिक् (स्पेस)

अर्थात् सदाशिव की 'ग्रेमिटेशन' शक्ति और महाकाल (एलेक्ट्रो मेग्नेटिज्म) ने अनेकानेक तत्त्वों (एलीमेंट्स) की सृष्टि की। इसी सिद्धान्त का स्वरूप 'श्रीयंत्र' में निहित है।

त्रिकोण के बाहर या पश्चात् जो वृत्त है, वह शक्ति की 'रेडियेशन' का द्योतक है। इस वृत्त पर जो दल है, वे शक्ति के विभागों (सेक्शन्स) के द्योतक हैं। सबके पश्चात् 'भूपुर' विश्व की सीमा होने से शक्ति गति-क्षेत्र (फील्ड आफ फोर्स) है। पहले आधुनिक विज्ञान विश्व को असीम मानता था, किन्तु एन्स्टाइन ने गणित द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि स्पेस् सीमित है, पर घिरा हुआ नहीं है।

श्रीयन्त्रम्



तंत्र-विज्ञान का कहना है कि 'स्वयं वही (अनादि' अनंत महाशक्ति अपने को जानती है, दूसरा कोई उसे नहीं जान सकता'। इसी का अनु

सरण करते हुए आधुनिक विज्ञान भी अब कहने लग गया है कि 'ज्यों-ज्यों गणित के साधन बढ़ते हैं, वैसे-वैसे ज्ञेय दूर होता जा रहा है। सत्य पदार्थ का ज्ञान तो होता नहीं, केवल क्यों होता है, किस प्रकार होता है, इसी का आंशिक ज्ञान हो पाता है।'

वर्तमान भौतिक विज्ञान सत्य पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अब भौतिक सीमा से ऊपर उठ कर आधिदैविक (मेटाफिजिकल या स्पिरिच्युअल) क्षेत्र में जाने की आवश्यकता का अनुभव करने लगा है।

तंत्र के 'चेतना- सिद्धान्त' को आधुनिक विज्ञान नहीं मानता था। विश्व का मूल 'चिति' या 'चेतना' शक्ति है—यह तांत्रिक।सिद्धान्त है। आधुनिक विज्ञान चेतना (कांशस) को आदि मान कर मेकेनिकल या केमिकल संयोग से उत्पन्न मानता आया है, यही कारण है कि वह सत्य पदार्थ उसके लिए अज्ञात रहा है किन्तु अभी थोड़े ही दिनों से मूर्द्धन्य वैज्ञनिकों को 'चिति' शक्ति का आभास होने लगा है। आधुनिकतम सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एन्स्टाइन ने अपने जीवन के अन्तिम समय में यह अनुभव लिखा है कि—'अचिन्त्य की धारणा से ही जो सत्य विज्ञान की शक्ति है, प्रगाढ़ सुन्दरता का हृदय-ग्राही अनुभव होता है।'

इस कथन पर टिप्पणी करते हुए वैज्ञानिक बार्नेट लिखता है कि 'संसार समझता है कि डा० एन्स्टाइन एथीस्ट (अनीश्वरवादी) हैं, पर नहीं, वे महाचिति को विश्व का मूल समझते हैं।'

मंत्र-विज्ञान

तंत्र-विज्ञान श्रव्य ध्वनि (सुनाई पड़ने वाली आवाज़) को निम्न कोटि की बतलाता है। आधुनिक विज्ञान मंत्रों में निहित ध्वनि को महत्त्वपूर्ण इसलिए नहीं मानता है कि श्रव्य ध्वनि यदि डेढ़ सौ वर्षों तक निरन्तर उत्पन्न की जाए तो उससे केवल एक प्याला पानी गरम करने की ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। तंत्र-विज्ञान का मत है कि सबसे अधिक प्रभावशाली ध्वनि सुनी नहीं जाती, वह केवल अनुभवगम्य होती है। मानसिक जप

या अजपा जप में जीभ ओंठ आदि कुछ नहीं हिलते, फिर भी जप समय साँसों से वह ध्वनि प्रस्फुटित होती रहती है। निष्कर्ष यह कि ह जो अनुभव होना है, उस शब्द के लिए 'स्फोट' अवश्यक होता है। आधु निक विज्ञान में 'स्फोट' को नापने के लिए अबतक कोई साधन नहीं ब पाया है।

कर्णातीत तरंगें उत्पन्न करने के लिए हमारे शरीर में ऐसा को अवयव नहीं है, किन्तु मंत्रों का जप करते समय जो 'स्फोट' होता है। वह उन कर्णातीत तरंगों से कम प्रभावशाली नहीं होता है। तंत्र-विज्ञान शब्द को आदिशक्ति-परम शिव मानता है। उसके मत से शब्द में केवल एक 'तन्मात्रा' है। शेष तत्त्वों में तन्मात्राओं का भार बढ़ता जाता है। तंत्र-शास्त्र में आकाशतत्त्व की साधना की जाती है और योगशास्त्र वायु-तत्त्व की साधना की जाती है।

योगी प्राणवायु द्वारा जिस कुण्डलिनी को जाग्रत करता है, तंत्र-साधक उस का जागरण मंत्र-जप से उत्पन्न 'स्फोट' से करता है। योग-साधना द्वारा योगी जिस अगम्य स्थिति को प्राप्त करता है, तंत्र-साधक उस स्थिति को आकाश तत्त्व की साधना द्वारा सहज ही प्राप्त कर लेता है।

तंत्र-साधना में मंत्र-शक्ति केवल ध्वनि ही नहीं है, उसमें भावना-विज्ञान भी निहित है। ध्वनि तो गुणित करने की शक्ति है। किन्तु मंत्र की भावना क्रियाशील रहती है। ध्वनि की तरंगें क्रमश: गमन करती हैं और भावनाओं, विचारों की चुम्बकीय शक्ति (◦-◦-◦-◦-◦-◦) रूप में गमन करती हैं। वैदिक-ऋचाओं की स्वर-प्रक्रिया में यही चुम्बकीय शक्ति रहती है।

संगीत में ध्वनि रहती है। मेघमल्हार राग गाने से पानी बरसने लगता है, दीपक राग गाने से दीपक जल उठते हैं। आज कल यूरुप में संगीत द्वारा अन्न, फल, दूध अधिक मात्रा में पैदा किये जाने लगा है।

ध्वनि से अधिक शक्तिशाली और प्रसन्नसाध्य 'वैखरी' वाणी का 'स्फोट' है। इस दृष्टि से मंत्र का फार्मूला बनाता है—

शब्द × भावना = शक्ति। ध्वनि अपने आपमें एक वातावरण है। देवार्चन के समय शंख, घंटा घड़ियाल की ध्वनि भक्ति-भाव का वातावरण पैदा करती है। युद्धक्षेत्र के रणवाद्यों की ध्वनि कायरों में भी वीर रस का उद्रेक उत्पन्न करती है। मृत्यु-संगीत, शोक-संगीत सुनते ही हृदय शोकमग्न हो जाता है। ध्वनि का यह प्रभाव सर्वत्र समान है। सारांश यह कि शब्द और भावना दोनों में एक प्रबल शक्ति निहित रहती है और मंत्रों में इन दोनों का समावेश रहता है।

यंत्र-विज्ञान

यंत्र का शब्दार्थ है—संयमित करना, केन्द्रित करना। यंत्र धारण करने से अथवा यंत्र का पूजन-दर्शन करने से यंत्र के अधिष्टान देवता या यंत्र में निहित मंत्र के अधिष्ठातृ देवता से यंत्र-साधक का तादात्म्य संबंध स्थापित होता है। उसका मन संयमित और केन्द्रित हो जाता है। शरीर के विभिन्न अवयव शक्ति के केन्द्र हैं। साधक को अपनी अभीष्ट-सिद्धि कराने में यंत्र के अधिष्ठातृ देवता सहायक बनते हैं। साधक यंत्र में निहित देवता या मंत्र पर जब अपना ध्यान केन्द्रित करता है तो उस का अभीष्ट पूरा होता है। ध्यान और बीज मंत्र के जप करने से अथवा हवन करने से इष्ट देवता की शक्ति मंत्र में समाविष्ट होकर यंत्र को 'चैतन्य' बना देती है। यही कारण है कि यंत्र-पूजन करने से तथा शरीर में यंत्र को धारण करने से तुरंत कार्यसिद्धि होती है। यंत्र मूलरूप में विभिन्न शक्ति केन्द्रों के मानचित्र के समान हैं, जिन्हें धारण करने से, अथवा उनकी पूजा करने से साधक की अभीष्ट शक्ति प्रवुद्ध हो जाती है।

यंत्र लिखने की विशेष विधि हुआ करती है। यंत्रों में रेखाओं, बिन्दुओं, बीजांकों, बीजाक्षरों या मंत्रों को विधि-विशेष द्वारा संयोजित

किया जाता है। यंत्र-रचना में तनिक भी असावधानी होने पर यंत्र निरर्थक तो बनता ही है, विपरीत फल भी देता है। यंत्र की रचना-विधि, साधना-विधि के मूल में निहित जो तत्त्ववाद है, वही यंत्र के 'चैतन्य' को जाग्रत करना है। यन्त्र शरीरस्थ सूक्ष्मशक्तियों को मन्त्र के सहकार से जाग्रत करना है और तन्त्र उस जाग्रत शक्ति को सम्पूर्ण देह के विभिन्न केन्द्रों में प्रसारित करता है।

यन्त्र की रचना करते समय रेखाएँ शुद्ध भाव का अवलंबन कर खींची जानी चाहिए। यन्त्र की वे रेखाएँ अन्तःकरण की शक्तियों को आन्दोलित, स्पन्दित कर उन्हें उद्बुद्ध करती हैं, उस समय मन और चित्त के संयोग से आसक्ति उत्पन्न होती है और अहङ्कार तथा बुद्धि के संयोग से भावतत्त्व का उदय होता है तब अन्तःकरण विशुद्ध, निर्मल बन जाता है और साधक की कामना पूरी होती है।

जो यन्त्र स्वतः दैवीशक्ति-सम्पन्न होते हैं, उन्हें दिव्य यन्त्र कहा जाता है। ऐसे यन्त्रों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बीसा यंत्र, पंचदशी यंत्र, श्रीयन्त्र आदि दिव्य यन्त्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मन्त्र बहुसंख्यक हैं, उसी प्रकार यन्त्र भी बहुविध और बहुसंख्यक है। यन्त्रों का रचना-विधान भी प्रयोजन के अनुसार कई प्रकार का होता है। मन्त्रों को सिद्ध करने के लिए प्रयोजन के अनुसार दिन, तिथि, घड़ी, नक्षत्र, मास, पक्ष आदि काल निर्धारित है। लेखनी, मसि, पत्र आदि भी प्रयोजन के अनुसार विभिन्न होते हैं।

यन्त्र दिव्य एवं अलौकिक शक्तियों के निवास होते हैं। यन्त्रों में चौदह प्रकार की शक्तियाँ निहित रहती हैं। उन शक्तियों की सामर्थ्य-सीमा के अन्तर्गत यन्त्र साधक को फल दिया करते हैं। प्रत्येक यन्त्र चौदह प्रकार की शक्तियों में से किसी न किसी शक्ति के अधीन रहा करते हैं। इन्हीं शक्तियों की चौदह संख्या के आधार पर यन्त्रों की रेखाओं और कोष्ठों का निर्माण होता है। जिन चौदह शक्तियों के वशीभूत यन्त्र होते हैं, उनकी नामावली इस प्रकार है—

१. **सर्वसंक्षोभिणी**, २. **सर्वविद्राविणी**, ३. **सर्वाकर्षिणी**, ४. **सर्वाह्लादकारिणी**, ५. **सर्व सम्मोहनी**, ६. **सर्वस्तम्भनकारिणी**, ७. **सर्व-जृम्भणी**, ८. **सर्वशङ्करी**, ९. **सर्वरञ्जनी**, १०. **सर्वोन्मादकारिणी**, ११. **सर्वार्थसाधिनी**, १२. **सर्वसम्पत्पूरिणी**, १३. **सर्वमंत्रमयी**, **और** १४. **सर्वद्वन्दक्षयंकरी** ।

यन्त्रों में जिन अंकों को निहित किया जाता है, वे सभी ३६ संख्या के अन्तर्गत रहते हैं। ३६ की संख्या का अपना एक रहस्य-विज्ञान है। जिस प्रकार विन्दु रूप 'परावाक्' सकल शब्दों की जननी है, उसी प्रकार यह सकल अर्थरूप ३६ तत्त्वों की भी जननी है। ५ महाभूतों ५ ज्ञानेन्द्रियों, ५ कर्मेन्द्रियों और ५ इन्द्रियों के विषय, मन, वुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव—ये ३६ तत्त्व हैं।

जैसे मंत्रों के बीजाक्षर होते हैं वैसे ही यन्त्रों में भी १ से लेकर ३६ तक की संख्या वीज संख्या मानी जाती है। ये वीज संख्याएं १४ शक्तियों के अधोन होकर ३६ तत्त्वों के भावों को अलग-अलग प्रकट कर रेखाओं, कोष्ठों के आकार-प्रकार और बीजाक्षरों के अधिष्ठातृ देवताओं का प्रतिनिधित्व करती हुई उन देवताओं की शक्तियों को स्थान-विशेष पर प्रकट कर साधक के संकल्प को पूरा करती हैं।

इन ३६ तत्त्वों के अन्तर्गत पृथिवी, जल, वायु आदि जो २५ तत्त्व हैं वे वर्णमाला के २५ बीजों से संबंध रखते हैं। अंकगणित के अनु-सार १ से लेकर ९ तक की संख्या मूल संख्या मानी गई है। इस मूल संख्या के संश्लेषण, विश्लेपण; संयोग और वियोग से तथा 'शून्य' के सहयोग से अगणित संख्याएँ वनती हैं। १, ९ और ० का तंत्र विद्या में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस तरह मंत्रों के एकाक्षरी बीजों के अनेक अर्थ होते हैं, उसी प्रकार यंत्रों के प्रत्येक संख्या-बीज कई-कई अर्थों के वोधक होते हैं।

यन्त्रों में निहित रहस्य-विज्ञान को हृदयंगम कर लेने पर ही यन्त्र का निर्माण और उनकी साधना सही और सफल होती है यन्त्र-तत्त्व को न समझ कर मनमानी रेखाएँ खींच कर उनके कोष्ठों में अंकबीज वर्णबीज भरकर यन्त्र बनाना और उन्हें डाक पार्सल द्वारा भेजना तन्त्र विद्या के साथ अन्याय करना है। ऐसे यन्त्र निष्फल तो होते यन्त्र-व्यवसायी भी अभिशप्त होते हैं।

यन्त्रों की हर रेखा की एक माप होती है, रेखाओं द्वारा निर्मित कोष्ठों का आयतन समान होना चाहिए और कोष्ठों के मध्य भाग में संख्याबीज, वर्णबीज, बिन्दुबीज आदि लिखने चाहिए।

सामान्यतः यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। एक तावीज के रूप में और दूसरा पत्र के रूप में। दोनों प्रकार के यन्त्रों में स्वर्ण, चाँदी, ताँबा का प्रयोग होता है। कुछ यन्त्रों में पंचधातु, अष्टधातु का भी उपयोग किया जाता है। तावीज-यन्त्र प्रायः भोजपत्र पर लिखकर सिद्ध किए जाते हैं। पत्र-यन्त्र स्थायी पूजन के लिए सोने, चाँदी या ताँबे के पत्र पर उत्कीर्ण हुआ करते हैं। श्रीयन्त्र, कवच आदि की गणना महायन्त्रों में की जाती है, इन्हें तावीज में भरकर धारण करना संभव नहीं है इसलिए इन्हें धातु-पत्रों में अंकित किया जाता है। धातु-पत्र यन्त्रों का संस्कार, अभिषेक, प्राणप्रतिष्ठा करके उनका पूजन देवप्रतिमाओं की तरह किया जाता है। साथ ही उनके मूलमन्त्र, बीजमन्त्र का जप, हवन आदि भी किया जाता है।

हमारा निजी अनुभव यह है कि धातुओं पर अंकित यन्त्रों की अपेक्षा भोजपत्र पर लिखे गए यन्त्र चाहे वह स्थायी साधना के लिए हो या शरीर में धारण करने के लिए हों अधिक प्रभावशाली होते हैं। इसका कारण यह है कि धातु की अपेक्षा भोजपत्र में कास्मिक किरणें उत्पन्न करने और स्पन्दन, ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है।

तंत्र विद्या के तीन विभाग हैं—**कादि**, **हादि** और **सहादि**। **कादि** आद्या शक्ति (काली) का बोधक है, **हादि** श्रीविद्या (लक्ष्मी) का और **सहादि** सरस्वती का बोधक है। इन विभागों के यन्त्र भी भिन्न होते हैं। कादि का यन्त्र केवल शक्ति त्रिकोणों से बनता है हादि का यन्त्र शिव और शक्ति के सम्मिलित त्रिकोणों से बनता है। सहादि यन्त्र उभयात्मक होता है।

बीजमन्त्र-विज्ञान

महाप्रकृति पराविद्या, अविद्या क्रिया के अलग-अलग दैवत होते हैं। प्रत्येक विद्या-दैवत की शक्ति में सूक्ष्मतम तत्त्व निहित रहते हैं। तत्त्व युक्त विद्या-दैवत, की क्रिया के अनुसार ध्यान भी पृथक्-पृथक् प्रकल्पित हैं। ध्यान के अनुकूल ही महाविद्या के नाम भिन्न-भिन्न रखे गए हैं। प्रत्येक महाविद्या के क्रिया के मूल भाव—बीजाक्षरनाद (मूलबीज) में योगियों, सिद्धों ने प्रत्येक महाविद्या के बीज संयुक्त किए हैं। उस दिव्य 'नाद ब्रह्म' को ही क्रिया शक्ति के 'बीजमन्त्र' के नाम से जाना जाता है।

बीजमन्त्र का निरतन्र जप, चिन्तन या मनन करते रहने से वह बीज साधक के मन और उसकी जीवनी-शक्ति के सम्पुट में दब कर प्रस्फुटित होता है इस प्रस्फुटन को आधुनिक विज्ञान 'ब्रेकिंग ऑफ कास्मिक एम्बायो एण्ड अनिसिस ऑफ एलेक्ट्रान्स एण्ड एटम्स' कहता है इस क्रिया से बीक्षाक्षर में निहित अन्तःशक्ति साधक के 'चित्' मन पर प्रभाव डालती है और साधक के 'चित' अस्तितव में एक विचित्र प्रकार की महाशक्ति उत्पन्न करती है, जिसे तन्त्र शास्त्र अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धियाँ कहता है। इन सिद्ध-शक्तियों में जो साधक फँस जाता है, वह अपनी इष्ट-साधना का लक्ष्य नहीं प्राप्त कर पाता है।

इस प्रकार के बीजमंत्र जब भिन्न-भिन्न महाविद्या—दैवतशक्ति के भिन्न-भिन्न नाम से जपे जाते हैं, तब साधक को विशेष दैवीसहायता

प्राप्त होती है। और वह सिद्धि प्राप्त करता है। उस नाम और देवता के ध्यान युक्त 'नाद' को मंत्र कहा जाता है।

बीजमंत्रों मे निहित अव्यक्त शक्ति

शब्द संयम, शब्द-साधना भारतीय ऋषियों की ऐसी देन है जो प्रत्यक्ष और प्रमाण द्वारा शाश्वत सिद्ध है। अक्षरों और शब्दों में निहित अव्यक्त शक्ति का साक्षात्कार और अनुभव शब्द-संयम द्वारा किया जा सकता है। शब्द-संयम भाषा विज्ञान का मूल उद्गम है। वर्तमान भाषा-विज्ञान इसलिए अपूर्ण है कि उसमें शब्द-संयम पद्धति का अभाव है। शब्दों में छिपी हुई दिव्य शक्ति का स्फुरण कैसे होता है, इस पर प्राचीन शब्द-शास्त्रियों ने जो मनन किया है, और फिर उस पर जो प्रयोग किए हैं, वही आज हमें शब्दशास्त्र के रूप में उपलब्ध है।

बीजमंत्र—इन्हीं शब्दों की चमत्कारी शक्ति मन्त्र कहे जाते हैं। बीजमन्त्र कतिपय दिव्य वर्णों की समष्टिमात्र हैं। उन वर्णों के स्थान, प्रयत्न के भेद को समझते हुए ठीक ढंग से उन्हें संयोजित कर देने पर उनके अन्दर छिपी हुई अद्भुत शक्ति का स्फुरण हो जाता है। जैसे, 'राम' शब्द। यह एक मन्त्र है। इस युग में भी महात्मा गाँधी 'राम नाम' मन्त्र के महान् साधक हो चुके हैं। 'राम' मन्त्र के अन्दर छिपी हुई दिव्य शक्ति का स्फुरण समझने के लिए 'राम' का शब्द-संयम इस प्रकार करना चाहिए—

'राम' में 'र', 'अ', 'म' और 'अ' ये चार वर्ण हैं। 'र' का उच्चारण मूर्द्धा से होता है। 'अ' का उच्चारण कंठ से होता है, 'म' का उच्चारण ओष्ठ और नासिका से होता है। तथा 'आ' का उच्चारण कण्ठ से होता है।

मूर्द्धा (ब्रह्म रन्ध्र) परमात्मा का निवास स्थान है। कण्ठ स्वप्नाभिमानी 'जीव' का निवास स्थान है। जब हम 'राम' का उच्चारण

करते हैं तो मूर्द्धा में स्थित 'रकार' से उपलक्षित परमात्मशक्ति 'अकार' से उपलक्षित कंठस्थ जीव में आती है और 'मकार' के उच्चारण से वही वाणी और व्यवहार में अवतरित होती है। इस 'राम' शब्द के उच्चारण का फल यह होता है कि हमारी अन्तरात्मा में निहित परमात्मा की अव्यक्त शक्ति जीव में और जीव के व्यवहार में प्रस्फुटित और प्रकाशित होती है। अव्यक्त शक्ति के प्रस्फुटित होने से हम अपना कल्याण साधन करते हैं।

हमारे शरीर के अन्दर अनेक अवयव हैं। उनके भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं, जिनका उचित ढंग से संचालन करने पर विभिन्न प्रकार के लाभ हम प्राप्त कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्क में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त जीवन का स्रोत उमड़ता रहता है। मन्त्र-शक्ति द्वारा उसके अवरुद्ध मार्ग को उद्‌घाटित किया जाता है। उन अवरुद्ध अव्यक्त शक्तियों को जाग्रत करने के लिए शब्दों द्वारा स्पन्दन पैदा किया जाता है। कौन-सा अक्षर किस गुण के अवयव को जाग्रत करता है और उसके बाद कौन-सा अक्षर उसी के अनुसार बैठता है—इसका अनुभव प्राचीन ऋषियों ने किया है, और उन्हीं के अनुभव आज हमें शास्त्रों के रूप में उपलब्ध हैं। तन्त्र शास्त्र भी उन्हीं ऋषियों के अनुभवों का एक अंग है, जिसके द्वारा अव्यक्त शक्ति के ज्ञान का व्यक्तीकरण हुआ है।

मन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति है 'मननात् त्रायते स्वस्य मन्तारं सर्वभावतः'। तात्पर्य यह कि मन्त्र वही है जो अपने जप करने वाले की हर प्रकार से रक्षा करता है। मन्त्र पाँच प्रकार के होते हैं—

१—आगमिक

२—नैगमिक

३—पौराणिक

४—शावर

५—प्रकीर्णक

तन्त्र शास्त्र में मन्त्रों की पुरुष, स्त्री और नपुंसक तीन जातियाँ मानी गई हैं। **सिद्ध** और **साध्य** आदि भेद से इनके अनेक रूप होते हैं। शाप आदि के द्वारा जिन मन्त्रों की शक्तियाँ कील दी गई है, वे '**साध्य**' कहलाते हैं। जिस प्रकार शमी की लकड़ी में अग्नि अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहता है, और घिसने पर वह प्रकट होता है, उसी तरह मन्त्रों की पूर्ण शक्ति उनके बीजों में निहित रहती है, जो जप, अनुष्ठान, पुरश्चरण, हवन, अभिसेचन, अभिषेक आदि माध्यमों से प्रकट होती हैं।

बीजाक्षरों का आकाश से अभेद सम्बन्ध

जिस प्रकार धरती पर हम अनेक आकृतियाँ देखते हैं, वैसी ही आकृतियाँ कल्पनालोक में भी रहा करती हैं। काल्पनिक आकृतियों का वर्णन हमें तन्त्रशास्त्र और अंकशास्त्र में मिलता है। ये शास्त्र जिन-जिन आकृतियों का वर्णन करते हैं, उन्हें 'यन्त्र' कहा जाता है। ये यन्त्र उन अक्षरों, रेखाओं और अंकों के सहयोग से बनते हैं, जो दिव्य शक्ति से प्रभावित रहते हैं और साधक के मन में, शरीर में, आस-पास के वातावरण में अच्छा या बुरा प्रभाव डाला करते हैं। यन्त्रों में जो अंक लिखे जाते हैं, वे 'बीज' हैं। वे ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के ऊपर प्रभाव डालने की अपार शक्ति रखते हैं।

शब्दों और अंकों में एक प्रकार का कम्पन हुआ करता हैं। मीमांसा शास्त्र में शब्दों के कम्पन के सम्बन्ध में बहुत विस्तृत ढंग से बताया गया है। मीमांसा का मत है कि 'देवताओं की कोई अलग मूर्ति नहीं होती है। देवता तो मन्त्र- मूर्ति होते हैं। इसलिए मन्त्रों के उच्चारण से केवल उच्चारण करने वाले के शरीर पर ही नहीं बल्कि आकाश में भी कम्पन पैदा होता है।'

प्रत्येक शब्द का आकाश में अपना स्थान रहता है। जो वाणी से निकलते ही तरंग के रूप में आकाश में पहुँच कर अपना स्थान ग्रहण

कर लेता है। प्राचीन ऋषियों, मुनियों ने साधना करके, अनुभव करके यह बतलाया है कि 'मन्त्र शक्ति प्रत्यक्ष है, उसके शब्दों का कम्पन वही आकृति उत्पन्न करता है, जिसका उसमें वर्णन होता है। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर वही आकृति साकार रूप में उपस्थित हो जाती है। इच्छा-शक्ति के संयोग से उसी आकृति द्वारा मनचाहा कार्य कराया जा सकता है।'

मन्त्र-तन्त्रशास्त्र विशेषज्ञों ने बतलाया है कि 'शब्दों और अंकों का संबंध आकाश स्थित ग्रहों से रहता है। जितने भी नाम, अंक और आकृतियाँ है, वे उन सब कम्पनों के परिणाम से बनती हैं, जो सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से आते हैं। हर अक्षर की एक विशेष ध्वनि होती है और प्रत्येक ध्वनि का एक विशेष कम्पन होता है तथा प्रत्येक कम्पन में विशेष प्रकार के नाम और अंक होते हैं। प्रत्येक अक्षर एक विशेष संख्या के कम्पन होते हैं, जो आकाशीय ग्रहों से आते हैं। जैसे हम अपने पृथ्वी मंडल के मनुष्यों से अथवा अपने घर-परिवार के लोगों से अभेद संबंध रखते हैं, वैसे ही सूर्य मण्डल का संबंध समस्त पृथ्वी मण्डल से रहता है। वह संबंध हमें प्रकाश के कम्पन रूप से प्राप्त होता है।

संकल्प की आकृति-मंत्र

शरीर व्याकृति-विज्ञान विषयक ग्रन्थों से पता चलता है कि कुल १७ शिरोजाल है, जो पाँच विभागों में विभक्त हैं। सभी वस्तुएँ तत्त्व से निर्मित है। प्रत्येक वस्तु का आकार उसके मूल तत्त्व का समुच्चय हुआ करता हैं। ये आकार अनेक प्रकार के कम्पनों के परिणाम हुआ करते हैं। हर आकार एक विशेष प्रकार की स्पन्दन-विधि का द्योतक हुआ करता है। ये आकार प्रकाश के प्रतिक्षेप के द्वारा स्पन्दन फेंकते हैं और प्रभावित करते हैं। उन्हीं स्पन्दनों के उत्तर में हम राग-द्वेष्य, ईर्ष्या-मोह आदि करते हैं। तांत्रिक आचार्यो का मत है कि 'जगत्' के प्रत्येक पदार्थ का एक आकार होता है, जो यन्त्र या रेखाचित्र के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

तन्त्रशास्त्र का कहना है कि 'यन्त्रों और मन्त्रों के प्रयोग चित्तशुद्धि के लिए ही करने चाहिए।' इसी लिए मन्त्रों के जप करने का विधान है क्योंकि शुद्धि की प्रक्रिया में जप एक सोपान है। संकल्प की आकृति का ही नाम 'मन्त्र' है। हम जो संकल्प अपने मन में करते हैं, उसकी अभिव्यक्ति जप से होती है। देवनागरीलिपि की वर्णमाला के सभी अक्षर तांत्रिकों की दृष्टि में मातृकाएँ हैं। ये ही मातृकाएं 'बीज' की जननी हैं।

मन्त्रों के जप में प्रत्येक वर्ण के साथ बीज मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। जैसे—

ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा

यह एक बीज मन्त्र है। इसमें 'परमेश्वरि' शब्द परमशक्ति का बोधक है। 'ह्रीं' 'श्रीं' 'क्लीं'—ये तीनों बीज एक ही शक्ति के तीन विभिन्न रूप हैं। 'ह्रीं' माया का बोधक है, 'श्रीं' लक्ष्मी का और 'क्लीं' शक्ति का बोधक है। दार्शनिक अर्थ में इन तीनों बीजों का अर्थ सृजन-शक्ति, रक्षणशक्ति और संहार- शक्ति है।

उपर्युक्त बीज मन्त्र के 'स्वाहा' शब्द में 'स्वा' और 'हा' दो अक्षर हैं। 'स्वा' का अर्थ आत्मा और 'हा' का अर्थ समष्टि जीवन है। समष्टि चेतन के साथ जीवात्मा की एकता का भाव 'स्वाहा' है। मन्त्र जप करते समय साधक 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण कर पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण कर देता है।

कर्पूरस्तव और फेटकारिणी तन्त्र में बीजों के तात्पर्य बड़ी खूबी से समझाए गए हैं। उनके अनुसार कुछ बीजों के अर्थ यौगिक भी हुआ करते हैं। जैसे, 'ह्रीं' बीज को जब दो बार जोड़ा जाता है तो वही 'लज्जा' बीज कहा जाने लगता है। पाणिनि के धातुपाठ में भी 'ह्रीं' धातु का अर्थ लज्जा है। 'ह्रीं' बीज के गर्भ में सृष्टि तत्त्व का निरूपण निहित

है। सृष्टि रचते समा ब्रह्मा को लज्जा का अनुभव हुआ, वह अपने को माया की झीनी चादर में ढक लेता है। साधक, योगी और सिद्धगण माया के इस झीने अवरण को हटा कर ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं।

इसी प्रकार 'श्री' बीज का भी अर्थ सृष्टि तत्त्व के अनुकूल है। 'श्रीं' का अर्थ सेवा करना है। प्राणिमात्र वस्तुओं का सेवन कर प्राण धारण करता है। 'श्रीं' का यौगिक अर्थ विष्णु के भरण-पोषण कार्य से संगति रखत है। कुछ बीजों के सांकेतिक अर्थ भी होते हैं। जैसे, सतोगुण के लिए 'ऱ' का, रजोगुण के लिए 'र' का और तमोगुण के लिए 'त' का प्रयोग किया जाता है।

मारण, मोहन ादि षट्कर्मों के प्रयोग करते समय प्रयोगकर्त्ता की मनोवृत्ति कैसी रहतं है, इसका परिचय निम्नांकित सांकेतिक शब्दों से भली भाँति जाना ज सकता है—

नमः, स्वाहा, वधा, वषट्, वौषट्, हुं और फट् ये सांकेतिक शब्द हैं। अन्तःकरण कीशान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग किया जाता है। अपकारी शक्तियों ं विनाश के लिए और परहित के लिए 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग कि जाता है। अन्तःकरण की वह वृत्ति जो शत्रुओं को विनष्ट करने काााव खींचती है, उसका द्योतन 'वषट्' से होता है। अपने शत्रुओं में रस्पर विग्रह-विरोध उत्पन्न कराने का सूचक 'वौषट्' होता है। 'हुं' क्रो और वीर भाव का सूचक है और 'फट्' अपने शत्रुओं पर प्रहार रने का भाव रखता है।

संक्षेपतः मर, यन्त्र और तन्त्र के चमत्कारों का यही मूल रहस्य है। एक नित्य शा प्रकृति के अन्तराल में व्याप्त हो रहा है, यदि हम संयम और साधनद्वारा उसका साक्षात्कार कर लेते हैं, तो वही शब्द हमें अर्थ, धर्म, कम और मोक्ष प्रदान करता है।

२ | तांत्रिक योग-साधना

तंत्र अपने आपमें एक पूर्ण योग है। तांत्रिक सिद्धियों के लिए योगाभ्यास अनिवार्य है। ध्यान, धारणा, आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि के अतिरिक्त राजयोग, लययोग, हठयोग, भक्तियोग, मंत्रयोग आदि नानाविध योगों का समावेश तंत्रसाधना में पाया जाता है।

पातञ्जलयोगशास्त्र **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** कह कर चित्त-वृत्तियों के निरोध को ही 'योग' मानता है, किन्तु तंत्र शास्त्र **योगमेकत्वमिच्छन्ति वस्तुनोऽन्येन वस्तुना** कहकर एक वस्तु को दूसरी वस्तु में मिला देना ही 'योग' मानता है। मात्र इन्द्रियों तथा चित्त वृत्तियों से निरोध की भर्त्सना करते हुए अभिनवगुप्त ने 'मालिनीविजयवार्तिक में लिखा है—

अनादर विरक्त्यैव गलतीन्द्रिय वृत्तयः।

यावत्तु विनियम्यन्ते तावत्तावद् विकुर्वते ॥२।११२॥

—'यदि गृहस्थ गार्हस्थ्य जीवन बिताते हुए, लौकिक सुखों का अनुभव करते हुए शास्त्रविधि से भोग और वासनाओं को तृप्त करते हुए माहेश्वर आगम द्वारा बताए गए योग का अभ्यास करता है तो वह आत्मानन्द कला का रसास्वादन करता है। उस पर निर्भर रह कर वह अभ्यास करता रहे तो सभी सांसारिक भोगों से उसे विरक्ति हो जाती है। उसके मन में यह विचार पैदा होता है, कि **किमेतैर्क्षणिकैर्भोगैः**—इन क्षणभंगुर भोग-सुखों में क्या धरा है। इस प्रकार का निरादर भाव उत्पन्न होने पर साधक इन्द्रियों के कार्यव्यापार, विषय-भोगों की तृष्णा से विरत हो जाता है।'

तंत्रशास्त्र का मत है कि 'बलात् इन्द्रिय निग्रह करने से अनेक प्रकार से विकार उत्पन्न हो जाते हैं और कभी न कभी इस प्रकार का व्यक्ति महामोहमय विषमगर्त में गिरता है।'

समावेशयोग

शैवागम में बलात् इन्द्रिय-निग्रह को अच्छा नहीं माना गया है। वह सुखपूर्वक योगसाधना का उपदेश देता है। शैवागमयोग पातंजल आदि योगशास्त्रों से विशिष्ट महत्त्व रखता है। शैवागम 'समावेश-योग' का उपदेश देते हुए कहता है कि यह 'समावेश योग' दृढ़तर भावनावश सिद्ध होता है अथवा दृढ़ इच्छाशक्ति के प्रयोग से सिद्ध होता है।

'समावेश' की साधना करने से पूर्व साधक को यह अभ्यास करना चाहिए कि 'मैं सर्वत्र हूँ, सब में मैं ही हूँ, मुझ में ही सब कुछ है, मेरा ही सब कुछ है, मेरी ही शक्ति का विस्तार सर्वत्र व्याप्त है, यह विश्व मेरी ही शक्ति से प्रसारित और प्रचलित है।'

ऐसी भावना और विकल्प ज्ञानरूप से ज्ञानाभ्यास में क्रियांश एवं इच्छांश के गुणीभूत होने से इसका नाम 'ज्ञानयोग' पड़ा है। इसी को

आगमशास्त्रों के आचार्य 'शाक्तोपाय' कहते हैं । तंत्रशास्त्र का मत है कि 'शाक्तोपाय' के अभ्यास की प्रक्रिया सद्गुरु से सीखनी चाहिए' । अन्यत्र यह भी बताया गया है कि गुरु के वाक्य से या शास्त्र के वचन से अपने स्वभाव का वास्तविक ज्ञान करके तीव्रतर इच्छाशक्ति के प्रयोगाभ्यास का बल पाए भावनाभ्यास के बिना भी शिवभाव का समावेश प्राप्त हो जाता है । सद्यः समावेश-अभ्यास ही 'शाम्भवोपाय' कहा जाता है । माहेश्वर आगम इसे 'इच्छोपाय' अथवा 'इच्छायोग' भी कहता है । इस योग की साधना में जो परिपक्वता है , उसमें तो इच्छाशक्ति प्रयोग के बिना और प्रारम्भिक चित्त सम्बोधि के बिना भी किसी परिपूर्ण शिवभाव-समावेश सम्पन्न योगी के दर्शन, संस्पर्श मात्र से ही साधक में शिवता का समावेश हो जाता हैं । अत्यल्प उपाय प्रधान होनेसे स्वल्प अर्थ में 'नञ्' का प्रयोग होने से इस योग को ' अनुपाययोग' भी कहा जाता है ।

'शाम्भवोपाय' योग तो 'उपाय' और 'अनुपाय' प्राप्त करता हुआ साक्षात् शिवता—प्रत्यभिज्ञा का 'उपाय' कहा जाता है । 'शाम्भव उपाय'-योग निर्विकल्प होता है और 'शाक्तोपाय' योग शुद्ध विकल्पात्मक होता है । शाक्त साधकगण तो अपने लिए ही विकल्प बुद्धि का अवलंबन करते हैं, उनका और कोई प्रमेय नहीं रहता है । जो भी प्रमेयांश अपने लिए प्रयुक्त होते हैं, वे सामान्यतया 'यही सब कुछ है' इसी भाव से न कि विशेषतः इस स्थण्डिल या प्रतीक के लिए ।

जिस उपाय योग में बाह्य विशेष प्रमेयों का उपयोग होता है, उसे माहेश्वर आगम 'आणवोपाय' कहता है । इस 'आणवोपाय' में ध्यातृ-ध्येय-ध्यान संघट्ट को, प्राणोच्चार को, प्राणोच्चार ध्वनि को, प्राणवायु को, देहको, लिङ्गादि को, कलातत्त्व भुवनों को, मंत्र के वर्णों और पदों को विकल्प आलंबन एवं दृढ़तर भावना बल से अपने आप को भगवती परमाशक्ति में लय करके उस परमशक्ति को साधक प्राप्त कर

लेता है। वह साधक तत्काल परिपूर्ण शिव भावसमावेश प्राप्त कर लेता है।

भावना-योग

तंत्र-साधना पद्धति में मानसिक वृत्तियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मन और बुद्धि के आपसी संघर्ष को मिटा कर उन्हें साधक भावनायोग द्वारा एक ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करता है। भावना-योग की साधना से साधक का व्यक्तित्व शक्तिशाली बन जाता है।

जिस विचार या विश्वास को लेकर साधक भावना करता है, वह वहीं बन जाता है। भावना-योग के अभ्यास और विकास से शक्ति, ज्ञान और आनन्द के स्रोत उमड़ने लगते हैं। भावना न केवल मानसिक संस्कार करती हैं, बल्कि इसमें शरीरगत असाध्य से असाध्य रोग भी दूर हो जाया करते हैं। शरीर की शुद्धि, चित्त की शुद्धि के लिए भावनायोग सर्वोत्तम माना गया है।

कुण्डलिनी योग

शक्ति, ईश्वरी, कुटिलांगी, भुजंगी, अरुन्धती आदि अनेक नाम कुण्डलिनी के हैं। तंत्रशास्त्र इसे मानव शरीर की सर्वोच्च शक्ति मानता है। सभी शक्तियाँ केन्द्रीभूत होकर कुण्डलिनी में निवास करती हैं और विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ करती हैं काम शक्ति भी कुण्डलिनी की एक महती शक्ति है। जो व्यक्ति मैथुन-संभोगरत रहते हैं, ब्रह्मचर्य की साधना से विरत रहते हैं, उनकी कुण्डलिनी क्षीण हो जाती है। ब्रह्मचर्यरत रहने से कुण्डलिनी जागृत होकर उर्ध्वगमन करती है। जाग्रत कुण्डलिनी आध्यात्मिक उत्थान करती है और प्राणों के साथ शिव में मिल जाती है।

तन्त्रशास्त्र और योगशास्त्र दोनों के मत से कुण्डलिनी का स्थान मनुष्य शरीर में मलेन्द्रिय से दो अंगुल ऊपर और मूत्रेन्द्रिय से दो अंगुल नीचे माना गया है। यही स्थान मूलाधार चक्र का भी है कुण्डलिनी

नागिन की तरह साढ़े तीन वलय बनाकर कुण्डली मारकर मूलाधार चक्र में सोयी रहती है, वह सुषुम्णा के द्वार बन्द रखती है।

भूलोक (मूलाधार चक्र) में स्थित कुण्डलिनी प्रकृति को वहन करती है, इसलिए उसे प्रकृति का वाहन कहा जाता है। वह प्रकृति—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार—इन आठ भागों में विभक्त है। कुण्डलिनी के दो रूप हैं। एक कुण्डलिनी और दूसरी कुल-कुण्डलिनी, इसे महाकुण्डलिनी या ब्रह्माण्ड कुण्डलिनी भी कहते हैं। यह सहस्रार चक्र में रहती है। मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी नीचे से कुल कुण्डलिनी का संचालन करती है और ऊपर से सत्यलोक (सहस्रार-चक्र) में स्थित महाकुण्डलिनी मूल प्रकृति का संचालन करती है। दो रूपों वाली कुण्डलिनी ने मूलाधार और सहस्रारचक्र दोनों स्थानों पर अपने फन द्वारा पुरुष शक्ति को स्तम्भित कर रखा है। यह समस्त विश्व को लपेटे हुए पूँछ को मुँह के अन्दर दबाए हुए है। कुण्डलिनी के घेरे में अधोमुख त्रिकोण ▽ है। यह त्रिकोण अर्धनारीश्वर का प्रतीक है। इसी त्रिकोण को प्रतीक रूप में योगी अरविन्द ने और थिओसोफिकल सोसायटी ने अपनी साधना के लिए स्वीकार किया है।

तन्त्रशास्त्र में कुण्डलिनी एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका अर्थ शब्द ब्रह्म अथवा परावाक् शक्ति है। सभी मन्त्र, देवता कुण्डलिनी की अभिव्यक्ति हैं। मन्त्रों की रचना करने वाले अक्षर **मातृका** कहलाते हैं। मातृका से ही विश्व की रचना होती है। कुण्डलिनी महाशक्ति परमेश्वरी है, वही नादशक्ति है, वही सर्वशक्ति सम्पन्न कला है। निर्गुण ब्रह्म से प्रस्रावित होने वाला अमृत स्रोत कुण्डलिनी ही है। कुण्डलिनी ही नित्य चेतना को जाग्रत करती है।

तन्त्र शास्त्र का मत है कि कुण्डलिनी ब्रह्म है, उसी में सभी अक्षर समाए हुए हैं। कुण्डलिनी चित् शक्ति है जो वर्ण और शब्दों के रूप में प्रकट होती है। वर्णमाला के अक्षर शाश्वत ब्रह्म के यन्त्र हैं। अक्षरों की

शक्ति जब मन्त्र शक्ति से मिलती है, तब साधक को साधना द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। शक्ति का सूक्ष्म रूप कुण्डलिनी है, जब वह स्थूल रूप में प्रकट होती है, तो विभिन्न देवताओं का आकार ग्रहण करती है। कुण्डलिनी का यह स्थूल रूप ही मन्त्र का अधिष्ठातृ देवता कहा जाता है।

मन्त्र और देवता ब्रह्म के दो रूप हैं। तन्त्र-साधना में इन्हें **शिव** और **शक्ति** कहा जाता है। स्तुतियों और प्रार्थनाओं में उपासक अपनी कामना अपने इष्टदेव के समक्ष प्रस्तुत करता है। स्तुति और प्रार्थना को मन्त्र नहीं कहा जा सकता है, इस लिए कि मन्त्रकामना रहित होते हैं, उनकी भाषा स्तुतियों की भाषा की भाँति साधक की निजी भाषा नहीं होती है। मन्त्रों की भाषा स्थिर और शाश्वती होती है। स्तुति, प्रार्थना में दास्य-भाव रहता है, उनमें दिव्य भाव नहीं रहता है और मन्त्र तो स्वयमेव देवता होते हैं। मन्त्रों के अक्षर-विन्यास का एक निश्चित क्रम होता है। मन्त्रों का उच्चारण वर्ण और स्वर के अनुसार होता है, यदि मन्त्रों का अनुवाद कर दिया जाय तो मन्त्र का मंत्रत्त्व और दिव्यत्व समाप्त हो जाता है।

कुण्डलिनी विद्युत के समान भास्वर है। उसकी ध्वनि मधुमक्खियों के गुंजार की तरह है। श्वास, प्रश्वास के द्वारा कुण्डलिनी ही समस्त प्राणियों को जीवन देती है। मूलाधारपद्म में स्थित कुण्डलिनी आलोक-मण्डल के समान प्रकाशित होती है। कुण्डलिनी वर्णमातृका शब्दों की जननी है। वही मन्त्रों को जन्म देती है। मन्त्रों की सिद्धि कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए की जाती है। कुलार्णव तन्त्र का कहना है कि कुण्डलिनी प्रत्येक जीव के मूलाधार चक्र में सोई रहती है, जब वह जाग्रत होकर षट्चक्रों का भेदन करती है, तभी अपने शुद्ध रूप में प्रस्फुटित होती है। समस्त वेद, मन्त्र और तन्त्र उसी के रूपान्तर है। कुण्डलिनी शब्द ब्रह्म है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि के रूप में तीन शक्तियों

का मूल कारण है। मानव-देह में सर्वाधिक प्रबल सर्जना-शक्ति कुण्डलिनी है।'

आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत किया जाता है। आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास से प्राण इड़ा और पिंगला नाड़ियों से निकलकर सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट होते हैं तब कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठती है। ऊर्ध्वगमन करती हुई कुण्डलिनी जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच जाती है, तब साधक शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है फिर उसके लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता है।

कुण्डलिनी को जाग्रत कर उसे सहस्रार चक्र तक पहुँचने के लिए अनेक वर्षों का समय लग जाता है, किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि पूर्व जन्म के संस्कारों से अथवा सुयोग्य गुरु की कृपा से अल्पकालीन प्रयास से ही कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है। प्रारम्भ में कुण्डलिनी उठ कर एक निश्चित विन्दु पर ठहरती है, फिर धीरे धीरे ऊपर की ओर बढ़ती है। जिस चक्र पर कुण्डलिनी पहुँचती है, उस चक्र के अनुसार साधक को विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। जब कुण्डलिनी सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है तो योगी को उस समय मोक्ष का-सा आनन्द प्राप्त होता है।

आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्राओं के अभ्यास से प्राण जब सुषुम्णा में प्रवेश करते हैं तो सुषुम्णा काल को निगल जाती है, उस समय न दिन रहता है, न रात। प्राणों को सुषुम्णा में प्रवेश कराने के लिए अनेक उपाय तन्त्र-साधना के अन्तर्गत हैं। अपान वायु को ऊपर की ओर और प्राण वायु को नीचे की ओर खींचने से प्राण सुषुम्णा में प्रवेश करते हैं।

जालन्धर और मूल बन्ध के द्वारा प्राण जब सुषुम्णा से मिलते हैं तो अग्नि प्रदीप्त हो उठता है। अग्नि की यह उष्णता सोई हुई कुण्डलिनी को जगा देती है, वह आवाज करती हुई कुण्डली त्याग कर सीधी हो

जाती है और सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाती है। फिर प्रयास पूर्वक एक के बाद एक चक्र में क्रमशः उसे ले जाया जाता है। इसी को षट्चक्र भेदन कहते हैं।

कुण्डलिनी-जागरण की प्रक्रिया

योग-क्रिया शुद्धि से पूर्व मल शुद्धि की जाती है। कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए पहले **अश्विनी मुद्रा** का प्रयोग करना चाहिए। गुदा को बार-बार संकुचित और प्रसारित्त करना **अश्विनी मुद्रा** है। इस मुद्रा का प्रयोग षट् चक्र भेदन में अपान वायु के अवरोध के रूप में किया जाता है।

अश्विनी मुद्रा के बाद **शक्ति चालन** मुद्रा करनी चाहिए। उदर को अन्दर खींच कर दाहने और बाएँ हिलाने से शक्ति **संचालन मुद्रा** बनती है। इस मुद्रा के द्वारा प्राण वायु को सुषुम्णा में प्रविष्ट कराया जाता है। इस मुद्रा के साथ सिद्धासन में बैठ कर पूरक प्राणायाम किया जाता है। और प्राण तथा अपान को मिला दिया जाता है।

शक्ति संचालन मुद्रा के साथ **योनि मुद्रा** की जाती है। योनिमुद्रा सिद्धासन पर बैठ कर की जाती है। दोनों हाथ की दसों अँगुलियों से कान (अँगूठों से), आँखें (तर्जनी अंगुलियों से), नाक के दोनों छिद्र (मध्यमा अंगुलियों से) और मुख (अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियों से) बंद कर लिए जाते हैं। इस मुद्रा से कान, आँख, नाक और मुख इन्द्रियों पर वाह्य प्रभाव नहीं पड़ता है। सिद्धासन में बैठने का भी यही तात्पर्य है। इस आसन में बाएँ पैर की एँड़ी से गुदा द्वार को दबाया जाता है और दाहने पैर की एँड़ी बाएँ पैर पर रख कर मूत्रेन्द्रिय को ढाक लिया जाता है। योनि मुद्रा कर के योगी **काकिनी** मुद्रा द्वारा प्राण-वायु को खींचता है और उसे अपानवायु से जोड़ देता है। दोनों ओठों को कौवे की चोंच की तरह सिकोड़ कर साँस अन्दर खींचना काकिनी मुद्रा है।

इसके बाद योगी षट्चक्रों का क्रमशः ध्यान करता है और सोऽहं हंसः इस बीज मन्त्र का अजपाजप करते हुए कुण्डलिनी को जाग्रत करता है। कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए **खेचरी मुद्रा** की जाती है, इससे ध्यान परिपक्व होता है। महामुद्रा तथा महावेध का अभ्यास महाबंध के साथ किया जाता है। इसमें साधक बाएँ पैर की एँड़ी को मूलाधार चक्र पर जमा कर दाएँ पैर को सीधा फैला देता है और दोनों हाथों से दाएँ पैर का पंजा पकड़ लेता है। तत्पश्चात् जालन्धर बंध लगा कर फैले हुए पैर के घुटने पर सिर को रख देता है, इससे प्राण सुषुम्णा में प्रवेश कर कुण्डलिनी को जाग्रत करता है।

षट्चक्र

तन्त्र-साधना में साधना को दृष्टिगत रखते हुए शरीर को दो भागों में बाँटा गया है। १–कमर से ऊपर का हिस्सा, २–कमर से नीचे का हिस्सा। इन दोनों भागों के मध्य में शरीर का केन्द्र है। शरीर का ऊपरी भाग मेरुदंड पर अवलंबित है और मेरुदण्ड पूरे शरीर से संबंध रखता है। पीठ की रीढ़ को **मेरुदण्ड** कहा जाता है। जैसे मेरु पर्वत को पृथ्वी की धुरी माना गया है, उसी प्रकार मेरुदण्ड पूरे शरीर की धुरी है। कमर और गर्दन के बीच का हिस्सा 'धड़' कहलाता है। यह भाग मस्तिष्क पर अवलंबित रहता है। रीढ़ में श्वेत और रक्त वर्ण के तत्त्व हैं और मूर्द्धा तथा धड़ में श्वेत-रक्त शिराएँ हैं। मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड में श्वेत तथा रक्त वर्ण की शिराएँ हैं, किन्तु परस्पर एक दूसरे से विपरीत रहती हैं।

तन्त्रशास्त्र का सिद्धान्त है, कि **यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे** जो शरीर में है, वही ब्रह्माण्ड में भी है। तदनुसार कमर से नीचे के भाग में सात लोकों की स्थिति की कल्पना की गई है। शरीरगत ये सात लोक विश्व की शक्तियों पर आधारित हैं। कमर से ऊपर का जो भाग है, उसमें मस्तिष्क और मेरुदण्ड के द्वारा चेतना प्रवाहित रहती है। इस ऊपरी भाग में भी

भूः, भुवः, स्वः, तपः, जनः, महः और सत्य ये सात चक्र हैं, जिन्हें सात लोक कहा जाता है। इनमें पाँचवाँ (लोक) मेरुदण्ड में स्थित हैं, छठा मस्तिष्क के नीचे और सातवाँ मस्तिष्क के ऊपर स्थित है। इसी सातवें लोक पर शिव और शक्ति का निवास है। शिव-शक्ति की साधना कर शिवत्व प्राप्त करने के लिए साधक षट्चक्रों की साधना उनका भेदन करके करता है।

षट् चक्रों के स्वरूप और स्थान

१, **मूलाधार** चक्र—यह मेरुदण्ड के मूल में स्थित है। इसका स्थान मूत्रेन्द्रिय और मलेन्द्रिय के मध्य का स्थान है।

२. **स्वाधिष्ठान चक्र**—इसका स्थान मूत्रेन्द्रिय के ऊपर है।

३. **मणिपूर चक्र**—इसका स्थान नाभि है।

४. **अनाहत चक्र**—इसका स्थान हृदय है।

५. **विशुद्धि चक्र**—इसका स्थान कण्ठ के मूल में है।

६. **आज्ञा चक्र**—इसका स्थान दोनों भौंहों के मध्य में है।

इन छह चक्रों को छह लोक कहा गया है, इन सबसे ऊपर मस्तिष्क के ऊपरी भाग में **सहस्रार चक्र** है, जिसे सातवाँ लोक कहा जाता है चेतना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति का केन्द्र सहस्रार चक्र है। यहीं पर परमशिव और शक्ति का निवास है। ये सभी चक्र पद्म (कमल) की तरह हैं।

इन पद्मों के स्थान, दल और वर्ण इस प्रकार हैं—

क्रम	**चक्र**	**स्थान**	**दल**	**वर्ण**
१	मूलाधार	गुदा	चार	व, श, ष, स
२	स्वाधिष्ठान	लिङ्ग	छह	ब, भ, म, य, र, ल,
३	मणिपूर	नाभि	दस	ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ

४	अनाहत	हृदय	बारह	क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ
५	विशुद्धि	कण्ठ	सोलह	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः
६	आज्ञा	भ्रूमध्य	दो	ह, क्ष

मूलाधार से आज्ञा चक्र ४+६+१०+१२+१६+२ वर्णों को जोड़ने से कुल योग ५० होता है। संस्कृत वर्णमाला के इन पचास वर्णों का श्रेणी-विभाजन कर इन्हें छह भागों में बाँट दिया गया है। साधना में चक्रों के इन्हीं वर्णों का ध्यान किया जाता है।

चक्रों और उन पर विन्यस्त वर्णों का समवाय संबंध है। जिस चक्र के अक्षर का उच्चारण किया जाता है, उस अक्षर के चक्र में एक प्रकार का स्पन्दन होता है, फिर वहीं से उस प्रकार की प्रथम स्फूर्ति होती है।

तन्त्र शास्त्र के मत से 'कुण्डलिनी सगुण ब्रह्म रूप हैं, वह मूलाधार चक्र में सोई हुई है, उसे कुण्डलिनी योग के द्वारा जगाया जाता है। जागने पर वह ऊपर की ओर उठती है। जब कुण्डलिनी ऊपर उठती है, तो प्रत्येक चक्र से सम्बद्ध तन्मात्रा और उससे बनी हुई इन्द्रिय उत्तरोत्तर अपने ऊपर वाले केन्द्र में लय हो जाती है जैसे—

मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्त्व से बना है वहाँ से जाग्रत होकर कुण्डलिनी जब जल तत्त्व से बने हुए स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश करती है तो पृथ्वी महाभूत, उसकी तन्मात्रा तथा उससे बनी हुई घ्राण इन्द्रिय, जल तत्त्व से बनी हुई रूप इन्द्रिय में विलीन हो जाती है। स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर मणिपूर चक्र है, यह नाभिस्थान में है और अग्नि-तत्त्व से बना है। जब कुण्डलिनी मणिपूर चक्र में पहुँचती है तो स्वाधिष्ठान चक्र का जल-तत्त्व मणिपूर चक्र के—अग्नि-तत्त्व में विलीन हो जाता है और रसना

इन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय में विलीन हो जाती है। मणिपूर चक्र के ऊपर हृदय-स्थान में अनाहत चक्र है, यह वायुतत्त्व से बना है। जाग्रत कुण्डलिनी जब अनाहत चक्र में पहुँचती है तो मणिपूरचक्र का अग्नितत्त्व अनाहत चक्र के वायुतत्त्व में विलीन हो जाता है और जब कुण्डलिनी कण्ठस्थ विशुद्धि चक्र में पहुँचती है तो आकाशतत्त्व से बने हुए विशुद्धि चक्र के आकाशतत्त्व में अनाहतचक्र का वायुतत्त्व विलीन हो जाता है। भ्रूमध्य स्थित आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी के पहुँचने पर सभी चक्रों के तत्त्व प्राण में विलीन हो जाते हैं। मस्तिष्क के तालु स्थान में स्थित सहस्रार चक्र पर जब कुण्डलिनी पहुँचती है तो प्राणतत्त्व प्रकृति में विलीन हो जाता है, और तभी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सहस्रार चक्र में कुण्डलिनी के पहुँचने पर शिव और शक्ति का संगम होता है।

प्राणविद्या

तांत्रिक-साधना में मन, मस्तिष्क और चित्तवृत्तियों को शान्त सुस्थिर बनाने के लिए तथा शरीर को निर्विकार, पवित्र बनाए रखने के लिए प्राण विद्या की साधना कीजाती है, इसमें आसन और मुद्राओं के रूप में पहले शारीरिक संशोधन किया जाता है, तत्पश्चात् प्राणायाम द्वारा मन को एकाग्र किया जाता है, फिर शरीर का शोधन किया जाता है—

१ शोधन—षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि करना षट्कर्म में पहला कर्म है **धौति**। धौति का अर्थ है धोना। अन्तरधौति, दन्त धौति, हृद् धौति और मूल धौति, इनमें से अन्तर धौति तीन प्रकार की होती है—

१. **वातसार,** अर्थात् वायु पेट में ले जाकर उसे बाहर निकालना।

२. वारिसार, शरीर में पानी भर कर फिर उसको वायु-मार्ग से निकालना।

३. **वह्निसार** इसमें नाभिग्रंथि को मेरुदंड से स्पर्श कराते हैं और इस प्रकार संघर्ष से उष्णता उत्पन्न करते हैं। इसके बाद बाहर निकालने की क्रिया की जाती है। इस क्रिया में साधक **काकिनी** मुद्रा द्वारा शरीर

में वायु भर लेता है और आधे पहर तक वायु को रोके रखता है, तदनन्तर सारे शरीर से वायु को निकाल कर उसे स्वच्छ कर देता है। इसी प्रकार अन्य धौतियों की पद्धति है।

२. वस्तिकर्म

यह क्रिया शुष्कवस्ति और जलवस्ति के रूप में दो प्रकार की होती है। जो जलवस्ति है, उसमें साधक नाभिपर्यन्त पानी में खड़ा हो कर **उत्कटासन** में बैठता है और अश्विनी मुद्रा से मलमार्ग का संकोचन और प्रसारण करता है या फिर वह पश्चिमोत्तान आसन में बैठ कर नाभि के नीचे मल को नाना-भाव से संचालित करता है।

नेति एक प्रकार की वस्ति है, जिसे नाक के रंध्रों में लगा कर नाक के छिद्रों की सफाई की जाती है। **लौकिकी** में साधक पेट को एक ओर से दूसरी ओर चलाता है। **त्राटक** में साधक किसी एक बिन्दु की ओर टकटकी लगाये, बिना पलकें झपाये देखता है, वह तब तक देखता रहता है जब तक आँखों से आँसू नहीं निकलते हैं। त्राटक से दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है। **वातक्रमण** में वायु को अन्दर खींच कर रोका जाता है और फिर उसे बाहर निकाला जाता है। **व्युत्क्रम** में नासिका से पानी लेजाकर नासान्ध्र से बाहर किया जाता है। इन्हीं क्रियाओं से साधक शरीर को शुद्ध करता हैं। षट्कर्म के बाद आसन की साधना की जाती है।

३. आसन

आसन तो बहुत बताए गए हैं। ८४ लाख योनियों की संख्या के आधार पर आसनों की संख्या ८४ लाख है, उनमें १६०० उत्तम माने गए हैं, किन्तु तांत्रिक-साधना में पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, शवासन, चितासन और मुंडासन मुख्य माने गये हैं।

कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए सिद्धासन तथा ऐसी मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है, जिनमें एक पैर की एड़ी गुदाद्वार को दबाती हैं और दूसरे पैर की एड़ीलिङ्गेन्द्रिय को दबाती है। योनि मुद्रा द्वारा कान,

नाक, आँख और मुख-छिद्र अँगुलियों से ढाक दिएजाते हैं। दाहने पैर की एड़ी गुदा पर जमा दी जाती है और बाएँ पैर की एड़ी लिङ्गेन्द्रिय पर जमा दीं जाती है और लिङ्गेन्द्रिय को संकुचित कर के दोनों के बीच इस प्रकार दबाया जाता है कि वह दिखाई न पड़े। साथ ही खेचरी मुद्रा द्वारा जीभ को उलट कर कण्ठ द्वार रोक दिया जाता है।

मुंडासन, चितासन, शवासन, प्रायः क्षुद्र भौतिक इच्छा की पूर्ति में सहायक होते हैं। मुंडासन में नरमुंडों पर बैठ कर साधना की जाती है। चितासन में चिताभूमि पर बैठ कर साधना की जाती है और शवासन में मृतशरीर पर बैठ कर साधना की जाती है। आध्यात्मिकक्षेत्र में इनका महत्त्व नहीं है, किन्तु फिर भी इन आसनों द्वारा की गई साधना से साधक भय और घृणा से मुक्त हो जाता है और निरन्तर साधना द्वारा शव को शिव बनाने की क्षमता प्राप्त करता है।

तांत्रिक योग-साधना का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करना है, इसलिए साधना के लिए एकान्त, निर्वातगुफा, पर्वत-शिखर, निर्जन स्थान, श्मसान नदी-तट आदि स्थान उपयुक्त माने गए हैं। तांत्रिक-साधना में श्मसान दो तरह के हैं—१-वाह्य श्मसान २-अभ्यन्तर श्मसान। वाह्यश्मसान वह है जहां मुरदे जलाये या दफ़नाए जाते हैं और अभ्यन्तर श्मसान हृदय में है जहां पर समस्त कामनाओं, वासनाओं, विषय-प्रपंचों का दहन किया जाता है।

वस्तुतः जिस अवस्था में सुखपूर्वक बैठा जा सके वह आसन है। विचारों को विशुद्ध बनाये रखने के लिए आसन की स्थिरता आवश्यक होती है। यदि किसी ऐसे आसन को लगाया जाए, जिससे शरीर स्थिर ना हो पाए, हिलना, डुलना बना रहे तो शारीरिक अस्थिरता और उस की हलचल से मन डाँवाडोल चंचल और अस्थिर रहता है। ध्यान-भंग हो जाता है। इसलिए साधक को यह स्वयं निर्णय करना चाहिए कि उसके लिए कौन- सा आसन सुखकर और शरीर तथा मन को स्थिरत

देने वाला है। यदि कोई व्यक्ति स्थूलकाय है तो वज्रासन में बैठना उस के लिए संभव नहीं है, इसी तरह पद्मासन भी उसके लिए विपत्ति जनक है, फिर भला ऐसा व्यक्ति कैसे सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह मंत्र-साधना, योग-साधना प्रारम्भ करने से पहले आसन और मुद्राओं का अभ्यास करे। एक आसन पर जब तीन घंटे तक सुखपूर्वक बैठने का अभ्यास हो जाए तो समझना चाहिए कि वह आसन सिद्ध हो गया है। आसनों और मुद्राओं का नियमित अभ्यास करते रहने से कुछ ही दिनों में वह सहज हो जाते हैं। जब साधक को आसन सिद्ध हो जाता है तो रजोगुण से उत्पन्न होने वाली मानसिक चंचलता दूर हो जाती है और मन, मस्तिष्क तथा शरीर सब में संतुलन आ जाता है।

आसनों की सिद्धि में मुद्राएँ और बन्ध अभेद सम्बन्ध रखते हैं। कुछ आसन ऐसे होते हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध प्राणवायु से रहता है। ऐसे आसन प्राणायाम की सिद्धि में सहायक होते हैं। इस प्रकार के आसनों में **सिद्धासन** बहुत ही उपयुक्त और उत्कृष्ट आसन है। 'हठयोगप्रदीपिका' में बताया गया है कि—

'जैसे यमों में अहिंसा, नियमों में मिताहार मुख्य है। वैसे ही आसनों में **सिद्धासन** मुख्य है।'

सिद्धासन का अभ्यास करते रहने से कुछ ही दिनों में **उन्मनी** अवस्था प्राप्त हो जाती है और तीन बंध अपने आप लगने लगते हैं।

४. मुद्रा

मुद्राएँ प्रदर्शित करने से साधक पाप-निवृत्त होकर इष्टदेवता का सान्निध्य प्राप्त करता है। मुद्राओं के स्वरूप समझने के साथ उसकी पारिभाषिक शब्दावली को समझना आवश्यक होता है।

दोनों हाथ की अंगुलियों, मुट्ठियों को जोड़ने, मोड़ने और खोलने

से सारी मुद्राएँ बनती हैं । इसलिए हाथ, अंगुली और मुट्ठी की भेद-संज्ञा को इस प्रकार जानना चाहिए ।

मणिबन्ध (हाथ की कलाई) से कनिष्ठा (छिंगुरी) तक का अंग हाथ है । हाथ का अग्रभाग पंच शाख, शय और पाणि कहलाता है । इसमें जो अंगुलियाँ हैं, वे करपल्लव या करशाख कहलाती हैं । अंगुलियाँ पाँच होती हैं—अंगुष्ठ (अंगूठा) इसे ज्येष्ठा, वृद्धा और भ्रूपूजक कहते हैं । दूसरी अंगुली को तर्जनी, प्रदर्शिनी, प्रदेशिका, पितृपूजिका कहते हैं । बीच की तीसरी अंगुली को मध्या, मध्यमा और जपकरणी कहते हैं । चौथी अंगुली को अनामा, अनामिका और प्रान्तवासिनी कहते हैं । पाँचवी कनिष्ठा को अन्त्यमा, लध्वी, स्वल्पा, रत्नी और अन्त्यजा कहते हैं । इन पाँचों अंगुलियों को बन्द कर लेने से मुष्टि (मुट्ठी) बनती है और खोल देने से करतल बनता है । मुष्ठि दो प्रकार की होती है, जिसमें रत्नी (कनिष्ठा) शामिल रहती है, वह मुष्टि (मुट्ठी) और जिसमें रत्नी न संलग्न हो वह अरत्नी कहलाती है ।

हाथ में तीर्थ और देवताओं का वास

हाथ के आरम्भ में अंगूठे के नीचे **आत्मतीर्थ**, हाथ के अन्त में अंगुलियों के ऊपर **परमार्थतीर्थ**, हाथ के उत्तर भाग में कनिष्ठा से कुछ नीचे **देवतीर्थ** और हाथ के दक्षिण भाग तर्जनी और अंगुष्ठ के बीच में **पितृतीर्थ** रहता है । स्नान, दान, संकल्प, तर्पण आदि कर्मों और उन-उन कर्मों के स्थानीय तीर्थ के ऊपर होकर त्यागने में महाफल होता है । हाथ के मूल में ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु और हाथ के अग्रभाग में शिव का वास रहता है ।

नित्य-साधना में उपयोगी मुद्राएँ

प्रार्थना-मुद्रा—दोनों हाथ की दसों अंगुलियों को आमने-सामने परस्पर मिला देने के बाद हृदय के समीप रखने से प्रार्थना मुद्रा बनती है ।

देने वाला है। यदि कोई व्यक्ति स्थूलकाय है तो वज्रासन में बैठना उस के लिए संभव नहीं है, इसी तरह पद्मासन भी उसके लिए विपत्ति जनक है, फिर भला ऐसा व्यक्ति कैसे सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह मंत्र-साधना, योग-साधना प्रारम्भ करने से पहले आसन और मुद्राओं का अभ्यास करे। एक आसन पर जब तीन घंटे तक सुखपूर्वक बैठने का अभ्यास हो जाए तो समझना चाहिए कि वह आसन सिद्ध हो गया है। आसनों और मुद्राओं का नियमित अभ्यास करते रहने से कुछ ही दिनों में वह सहज हो जाते हैं। जब साधक को आसन सिद्ध हो जाता है तो रजोगुण से उत्पन्न होने वाली मानसिक चंचलता दूर हो जाती है और मन, मस्तिष्क तथा शरीर सब में संतुलन आ जाता है।

आसनों की सिद्धि में मुद्राएँ और बन्ध अभेद सम्बन्ध रखते हैं। कुछ आसन ऐसे होते हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध प्राणवायु से रहता है। ऐसे आसन प्राणायाम की सिद्धि में सहायक होते हैं। इस प्रकार के आसनों में **सिद्धासन** बहुत ही उपयुक्त और उत्कृष्ट आसन है। 'हठयोगप्रदीपिका' में बताया गया है कि—

'जैसे यमों में अहिंसा, नियमों में मिताहार मुख्य है। वैसे ही आसनों में **सिद्धासन** मुख्य है।'

सिद्धासन का अभ्यास करते रहने से कुछ ही दिनों में **उन्मनी** अवस्था प्राप्त हो जाती है और तीन बंध अपने आप लगने लगते हैं।

४. मुद्रा

मुद्राएँ प्रदर्शित करने से साधक पाप-निवृत्त होकर इष्टदेवता का सान्निध्य प्राप्त करता है। मुद्राओं के स्वरूप समझने के साथ उसकी पारिभाषिक शब्दावली को समझना आवश्यक होता है।

दोनों हाथ की अंगुलियों, मुट्ठियों को जोड़ने, मोड़ने और खोलने

से सारी मुद्राएँ बनती हैं। इसलिए हाथ, अंगुली और मुट्ठी की भेद-संज्ञा को इस प्रकार जानना चाहिए।

मणिबन्ध (हाथ की कलाई) से कनिष्ठा (छिंगुरी) तक का अंग हाथ है। हाथ का अग्रभाग पंच शाख, शय और पाणि कहलाता है। इसमें जो अंगुलियाँ हैं, वे करपल्लव या करशाख कहलाती हैं। अंगुलियाँ पाँच होती हैं—अंगुष्ठ (अंगूठा) इसे ज्येष्ठा, वृद्धा और भ्रूपूजक कहते हैं। दूसरी अंगुली को तर्जनी, प्रदर्शिनी, प्रदेशिका, पितृपूजिका कहते हैं। बीच की तीसरी अंगुली को मध्या, मध्यमा और जपकरणी कहते हैं। चौथी अंगुली को अनामा, अनामिका और प्रान्तवासिनी कहते हैं। पाँचवी कनिष्ठा को अन्त्यमा, लध्वी, स्वल्पा, रत्नी और अन्त्यजा कहते हैं। इन पाँचों अंगुलियों को बन्द कर लेने से मुष्टि (मुट्ठी) बनती है और खोल देने से करतल बनता है। मुष्ठि दो प्रकार की होती है, जिसमें रत्नी (कनिष्ठा) शामिल रहती है, वह मुष्टि (मुट्ठी) और जिसमें रत्नी न संलग्न हो वह अरत्नी कहलाती है।

हाथ में तीर्थ और देवताओं का वास

हाथ के आरम्भ में अंगूठे के नीचे **आत्मतीर्थ**, हाथ के अन्त में अंगुलियों के ऊपर **परमार्थतीर्थ**, हाथ के उत्तर भाग में कनिष्ठा से कुछ नीचे **देवतीर्थ** और हाथ के दक्षिण भाग तर्जनी और अंगुष्ठ के बीच में **पितृतीर्थ** रहता है। स्नान, दान, संकल्प, तर्पण आदि कर्मों और उन-उन कर्मों के स्थानीय तीर्थ के ऊपर होकर त्यागने में महाफल होता है। हाथ के मूल में ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु और हाथ के अग्रभाग में शिव का वास रहता है।

नित्य-साधना में उपयोगी मुद्राएँ

प्रार्थना-मुद्रा—दोनों हाथ की दसों अंगुलियों को आमने-सामने परस्पर मिला देने के बाद हृदय के समीप रखने से प्रार्थना मुद्रा बनती है।

अंकुश मुद्रा—दाहने हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी को अंकुश के समान मोड़ने पर त्रैलोक्य को आकृष्ट करने वाली अंकुश मुद्रा बनती है।

कुन्तमुद्रा—मुट्ठी को खड़ी करके तर्जनी को सीधी करे और उसके अग्रभाग में अंगूठा लगाने से सर्वरक्षाकारी कुन्त मुद्रा बनती है।

कुम्भमुद्रा—दाहने अंगूठे को बाएँ अंगूठे में लगाकर शेष अंगुलियों को मुट्ठी बाँध कर नीचे-ऊपर लगादे और मुट्ठी को पोली रखे तो कुम्भ-मुद्रा बनती है।

तत्त्वमुद्रा—अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को मिलाने से तत्त्व मुद्रा बनती है।

सन्ध्योपासना की मुद्राएँ—१ सम्मुखी, २ संपुटी, ३ वितत, ४ विस्तृत, ५ द्विमुखी, ६ त्रिमुखी, ७ चतुर्मुखी, ८ पंचमुखी, ९ षड्मुखी, १० अधोमुखी, ११ व्यापक, १२ आञ्जलिक, १३ शकट, १४ यमपाश, १५ ग्रथित १६ सम्मुखोन्मुख, १७ प्रलय, १८ मुष्टिक, १९ मत्स्य, २० कूर्म, २१ वराह, २२ सिंहक्रान्त, २३ विक्रान्त और २४ मुद्गर। ये २४ मुद्राएँ सन्ध्याकाल में की जाती हैं।

सन्ध्याकाल-समाप्ति के बाद की मुद्राएँ—१ सुरभि, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ योनि, ५ शंख, ६ पंकज, ७ लिंग ८ निर्वाण ये आठ मुद्राएँ सन्ध्याकाल बीतने पर की जाती हैं।

ध्यानकाल की वासुदेवी मुद्रा—दोनों हाथों की अंजलि बाँधने पर यह मुद्रा बनती है। इसे ध्यान प्रारम्भ करने से पूर्व करनी चाहिए।

जपमुद्रा—अंगूठा और मध्यमा अंगुली के पोरों से मणियाँ चलाकर माला फेरने से जपमुद्रा बनती है। इसे करमाला भी कहते हैं।

शाम्भवी मुद्रा—मूल बन्ध और उड्डीयान बन्ध के साथ सिद्धासन या पद्मासन से बैठकर नासिका के अग्रभाग अथवा भ्रूमध्य में दृष्टि को स्थिर करके ध्यान जमाना शाम्भवी मुद्रा है। इस मुद्रा से मन सर्वथा वृत्ति शून्य हो जाता है।

५. बन्ध—बन्धों का अन्तर्भाव भी मुद्राओं के अन्तर्गत किया जाता है। बन्धों से प्राणों का निरोध होता है। तीन बन्ध मुख्य है—

मूलबन्ध, उड्डीयान और जालन्धर।

६. मूलबंध—मूल (गुदा) और लिंग स्थान के रन्ध्र को बन्द करने का नाम मूल बन्ध है। बाएँ पैर की एड़ी को गुदा और लिंग के मध्यभाग में दृढ़तापूर्वक जमाकर गुदा को सिकोड़ कर योनिस्थान अर्थात् गुदा और लिंग एवं कंद के बीच के भाग को दृढ़तापूर्वक संकोचन द्वारा अधोगत अपान वायु को धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींचने को मूलबन्ध कहते हैं। यह बन्ध सिद्धासन के साथ लगाया जाता है। इससे कुंडलिनी उठकर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है।

उड्डीयान बंध—दोनों जानुओं को मोड़कर पैरों के तलुओं को आपस में भिड़ाकर पेट के नाभि के नीचे और ऊपर आठ अंगुल हिस्से को बल-पूर्वक खींच कर मेरुदण्ड (रीढ़) से ऐसा लगादे कि पेट के स्थान पर गड्ढा-सा दिखे। जितना पेट के अन्दर की ओर अधिक खींचा जाएगा उतना ही अच्छा होगा। इस बन्ध से प्राण सुषुम्णा की ओर पक्षी की तरह उड़ने लगता है।

जालंधर बंध—कंठ को सिकोड़ कर ठोडी को दृढ़तापूर्वक कंठ रूप में स्थापित करे हृदय से ठोड़ी का अन्तर केवल चार अंगुल रहे। सीना आगे की ओर तना रहे। यह बन्ध कंठ के नाड़ीजाल को बाँधे रहता है। इस बन्ध से कंठ-स्वर मधुर-आकर्षक बनता है और कंठ के संकुचित हो जाने से इडा-पिंगला नाड़ियाँ बन्द हो जाती हैं तब प्राण सुषुम्ण में प्रवेश करता है।

लगभग सभी आसन और मुद्राएँ मूलबन्ध और उड्डीयान बन्ध के साथ किए जाते हैं।

५. महाबंध—महाबन्ध के द्वारा इडा, पिंगला और सुषुम्णा—इन

तीनों नाड़ियों के प्रवाह को एक ही दिशा में परिवर्तित कर अन्य क्रियाओं के साथ मन को आज्ञाचक्र पर स्थिर करना होता है।

विधि—बाएँ पैर की एड़ी को गुदा और लिंग के मध्यभाग में जमा कर बायीं जंघा के ऊपर दाहने पैर को रख समसूत्र में हो, वाम अथवा जिस नासारन्ध्र से वायु चल रहा हो, उससे ही पूरक करके जालन्धर-बन्ध लगाए। फिर मलद्वार से वायु का ऊपर की ओर आकर्षण करके मूलबन्ध लगाए। मन को मध्य नाड़ी में लगाए हुए यथाशक्ति कुम्भक करे। इसके बाद पूरक की विपरीत वाली नासिका से धीरे-धीरे रेचन करे। इस प्रकार दोनों नासिकाओं से अनुलोभ-विलोम रीति से प्राणायाम करे।

इस महाबन्ध से प्राण ऊर्ध्वगामी होता है और इडा-पिंगला सुषुम्णा का संगम होता है।

आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्राओं से कुंडलिनी जाग्रत की जाती है। इनके करने से प्राण इडा और पिंगला से निकलकर सुषुम्णा में प्रविष्ट होता है तब कुंडलिनी ऊर्ध्वगामी होती है।

ध्यान योग—हर देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय की आध्यात्मिक परम्परा में 'ध्यान' आध्यात्मिकसाधना, आत्मसाक्षात्कार और परमात्म ज्ञान का मुख्य तत्त्व माना गया है। ध्यान की साधना और सिद्धि सदैव एकान्त और मौन की रही है। ध्यान की साधना पुस्तकें पढ़कर नहीं करनी चाहिए ध्यान एक योगविद्या है जो गुरु-शिष्यपरम्परा प्रधान है। जिस प्रकार एक दीपक दूसरे दीपक से प्रकाश प्राप्त करता है, उसी प्रकार ध्यान-सिद्धि-आलोक को शिष्य गुरु से रहस्य के रूप में प्राप्त करता है।

आत्मा को आत्मा के द्वारा प्रज्वलित करने की यह प्रक्रिया वैदिक काल से अब तक निर्बाधरूप से चली आ रही है। ध्यान-योगी मौन होकर एकान्तवास करता है। वह ध्यानस्थ होकर अपने चारों ओर योग

और क्षेम का वितरण करता है। ध्यान में अद्‌भुत शक्ति निहित रहती है। ध्यान द्वारा विश्रृंखल मन को एकाग्र किया जाता है। दूषित-विचारों और दूषित वृत्तियों को ध्यान की तरंगे बहा ले जाती हैं। ध्यान चेतना-शक्ति को जाग्रत करता है और जाग्रत-चेतना में समस्त अनुभूतियाँ समा जाती हैं। ध्यान से विचारों में सामंजस्य उत्पन्न होता है। भेद-दृष्टि समाप्त हो जाती है। जब संकुचित जीवात्मा विराट् सत्ता में लीन हो जाता है तो वही ध्यान सिद्धि कहलाती है।

ध्यान के अभ्यास के लिए उतावली नहीं करनी चाहिए दीर्घकाल तक संयम, नियमपूर्वक ध्यान करते रहने मे ध्यान-सिद्धि प्राप्त होती है। एक निश्चित समय पर, शुद्ध, एकान्त स्थान में ध्यानाभ्यास करना चाहिए। ध्यान का समय अर्धरात्रि या ब्राह्मवेला उत्तम होता है। बैठने केलिए ऊन, कुशासन या मृग चर्म का आसन होना चाहिए। पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके ध्यान करना चाहिए। सामान्यतया सिद्धासन लगाकर बैठना चाहिए।

ध्यान से पूर्व संकल्प-निरोध—ध्यान करने से पूर्व संकल्पों का निरोध किया जाना चाहिए। मनुष्य के ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र के जीवन में दो प्रकार के संकल्प हुआ करते हैं—एक 'तात्कालिक संकल्प' और दूसरा 'महासंकल्प'। तात्कालिक संकल्प नित्य प्रति के कार्यकलाप एवं जीवन निर्वाह के लिए हुआ करते हैं और महासंकल्प अमर्यादित कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति के लिए हुआ करते हैं। इन दोनों प्रकार के संकल्पों में प्रथम तात्कालिक संकल्पों को सीमित करना चाहिए अधिक आवश्यकताएँ आकांक्षाएँ न बढ़ने देनी चाहिए। वासनापूर्ति के लिए उत्पन्न महासंकल्पों को मैत्रीभाव, भक्तिभाव और वैराग्यभाव से निवृत्त करना चाहिए।

संकल्प-निरोध की विधि—१. स्थिरचित्त होकर एकान्त में बैठ कर जिह्वा को मुख-विवर में ऐसी दशा में स्थापित किया जाय कि

वह ऊपर, नीचे और दाँतों, ओठों को छू न सके। दाँतों को परस्पर न मिलाकर उन्हें खुला रखा जाए और मुँह को बंद कर लिया जाए। ऐसा करने से जीभ का हिलना-डुलना बंद हो जाता है और मन में कोई संकल्प नहीं उठता है।

इस विधि का रहस्य-विज्ञान यह है कि शब्दों पर आरूढ़ होकर संकल्प अन्तर्देश में प्रकट हुआ करते हैं। हर शब्द के साथ कोई न कोई संकल्प संलग्न रहता है। शब्दों का उच्चारण वाणी से हुआ करता है। वागिन्द्रिय का अधिष्ठातृ देवता 'अग्नि' है। अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिए अरणि-मंथन किया जाता है। जिह्वा के नीचे का अधर अरणि और जिह्वा के ऊपर का ओठ उत्तर अरणि का जब जिह्वारूप मंथन-काष्ठ से आलोडन नहीं होगा तब अग्नि नहीं उत्पन्न होगा। अग्नि न उत्पन्न होने से शब्द नहीं होगा और शब्द न होने से संकल्प का भी उदय न होगा।

२. सुस्थिर होकर सिद्धासन या सुखासन (फालथी) में बैठ कर आँखों की दोनों पुतलियों का संचरण रोक कर उन्हें अचल बना दिया जाए। इससे मन में किसी भी रूप की कल्पना नहीं आती है। रूप का निरोध होने से संकल्प का निरोध होता है।

इसका रहस्य यह है कि संकल्प किसी न किसी रूप में उत्पन्न हुआ ही करते हैं। जितने भी विषय हैं, उन सब के आकार होते हैं और संकल्प निर्विषयक नहीं होते हैं। नेत्रों की पुतलियों का निरोध होने से रूप का निरोध होता और रूप का निरोध होने से संकल्पों का निरोध होता है।

३. मूलाधार चक्र से लम्बी घड़घड़ाहट, ध्वनि के साथ प्रणव (ॐ) का उच्चारण करने से संकल्प स्वतः निवृत्त हो जाते हैं।

४. जो व्यक्ति जिस किसी भी धर्म, सम्प्रदाय का हो वह उसी के अनुसार अपने इष्टदेव का नाम या इष्ट मंत्र अथवा प्रार्थना का मन ही मन उच्चारण करे तो संकल्प क्षीण होते हैं।

न्यास—न्यास का अर्थ है, स्थापना। अपने शरीर के अंग-अंग में अभीष्ट मंत्र अथवा देवता को स्थापित करना न्यास है। ध्यान से पूर्व न्यास करने से शरीर पवित्र हो जाता है, दिव्यशक्तियाँ नस-नस से प्रवाहित होने लगती हैं। साधक का शरीर देवतामय अथवा मंत्रमय हो जाता है। मन और इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। न्यास दो प्रकार का होता है—अन्तर्न्यास और बहिर्न्यास। दोनों प्रकार के न्यास भी मंत्र-न्यास और देवता न्यास के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, जिन्हें तत्त्व न्यास, व्यापक, किरीट-न्यास, ऋषि, छन्द और देवता न्यास, व्याहृति न्यास और मंत्रन्यास, मातृका न्यास कहा जाता है। आसन शुद्धि से लेकर न्यास पर्यन्त कर्म करने से साधक का बाह्य और अन्तर पवित्र हो जाता है।

एकाग्रता—न्यास के बाद एकाग्रता को ध्यान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मन, चित्त, इन्द्रियों को एकाग्र बनाने के लिए ही शान्त, एकान्त, शुद्ध स्थान ध्यान के लिए बताया गया है। एकाग्रता क्या है? इसे समझने के लिए बताया गया है कि मनुष्य की चेतना चारों ओर छितरी हुई रहती है और इधर-उधर विषयों, वस्तुओं की ओर दौड़ा करती है। जब कोई स्थायी स्वभाव का काम करना होता है, तो मनुष्य सबसे पहले छितरी हुई चेतना को समेट कर उसे एकाग्र करता है। एकाग्र-चेतना की पहचान तब की जा सकती है, जब छितरी हुई चेतना किसी एक स्थान और किसी एक कार्य, विषय या वस्तु पर एकाग्र होने के लिए बाध्य हो जाती है। जैसे, जब कोई वैज्ञानिक किसी पुष्प विशेष का अध्ययन करने में मग्न होता है तो उसकी चेतना उस पुष्प पर एकाग्र हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि एकाग्रता का ध्यान मस्तिष्क पर होता है। जैसे कोई शिकारी अपने शिकार पर निशाना साधता है तो उसकी चेतना सिमट कर उस शिकार के अंग विशेष पर एकाग्र हो जाती है। ऐसे ही कोई साधक किसी बिन्दु विशेष पर त्राटक करता है तो उस की एकाग्रता उसी बिन्दु पर टिक कर एकाग्र हो जाती है। उस समय साधक

केवल विन्दु को ही देखता है, इधर-उधर की न कोई वस्तु देखता है और न उसके मन में इधर-उधर के विचार पैदा होते हैं।

ध्यान के भेद—ध्यान कई प्रकार के हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए, आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए महाशक्ति का ज्योति रूप से ध्यान किया जाता है। इसके अलावा विभिन्न प्रयोजनों के लिए **पदस्थ-ध्यान, रूपस्थ-ध्यान, पिण्डस्थ-ध्यान, शक्तिवर्द्धक-ध्यान** आदि अनेक प्रतीक ध्यान योग के माध्यम हैं। किन्तु तांत्रिक-साधना में ध्यान करने से पूर्व अंगन्यास, करन्यास, हृदयन्यास करने का विधान है। हृदयन्यास में हृदय-कमल पर द्वादशकलात्मकसूर्य, षोडशकलात्मक चन्द्र और दशकलात्मक अग्नि तत्त्व का न्यास किया जाता है, इसे तत्त्वन्यास कहते हैं। तत्त्व-न्यास के बाद पीठन्यास किया जाता है, जिसमें क्रमशः आधार शक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीर समुद्र, श्वेत द्वीप, मणिमण्डल, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका और रत्नसिंहासन का ध्यान किया जाता है। पीठन्यास में आधार शक्ति की स्थापना नित्यप्रति अंगों में करने से साधक को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। वह वाह्य स्मृति रहित होकर अपने इष्टदेव की अनुभूति में मग्न हो जाता है।

ध्यान की पूर्णता—ध्यान-योग का एक विधान है—दोनों भौहों के बीच ध्यान को एकाग्र करना। दोनों भौहों के बीच के स्थान को त्रिपुटी कहा जाता है, उसी पर अन्तर्मन, गुह्य-दर्शन और संकल्प का केन्द्र है। यही कारण है कि ध्यान के समय जिसका चिन्तन त्रिपुटी में एकाग्र किया जाता है, उसकी प्रतिमूर्ति देखने का अनुभव होता है। अनुभूति ही ध्यान की पूर्णता है। जब तक अनुभूति नहीं होती है, तब तक ध्यान में सफलता नहीं मिलती है।

आनापान स्मृति—बौद्ध योग-साधना में 'आनापान स्मृति ध्यान' को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया है। श्वास-प्रश्वास पर ध्यान करने की प्रक्रिया को 'आनापान स्मृति' कहा गया है। इस ध्यान के अभ्यास में न

तो क्रियायोग है और न प्राणों का निरोध है। केवल श्वासों की गति पर मन को स्थिर कर उसका निरीक्षण किया जाता है। वस्तुतः आनापान स्मृति एक प्रकार का मानसिक ध्यान है। इस ध्यान के अभ्यास से सूक्ष्मता की वृद्धि होती है। इस ध्यान का अभ्यास करने के लिए 'स्मृति' और 'प्रज्ञा' का निर्मल होना आवश्यक है। स्मृति की निर्मलता के अनुसार ही निरीक्षण की स्पष्टता बढ़ती है। स्मृति जितनी दृढ़ होगी निरीक्षणता उतनी ही स्थायी बनती है। आनापान स्मृति के लिए शुद्ध एकान्त स्थान और पद्मासन को उपयोगी बताया गया है और शवासन को भी प्रधानता दी गई है। रात में चित लेट कर शव की तरह निश्चेष्ट बनकर इसका अभ्यास किया जाता है।

आनापान स्मृति में श्वासों पर ध्यान जमाया जाता है। श्वास-प्रश्वास अपनी स्वाभाविक गति के चलते रहते हैं, साधक केवल उनका निरीक्षण करता है। श्वास कहाँ से उठा, कैसे उठा, किस प्रकार धीर-धीरे बाहर निकला और फिर किस प्रकार लौट कर उसने प्रवेश किया—इन्हीं का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए साधक के मन में जब और कोई भावना या संकल्प नहीं रहता है, तो वह निरीक्षण करता हुआ गहरी नींद में सो जाता है। यह ध्यान थकावट, चिन्ता और क्लान्ति मिटाने तथा अनिद्रा-रोग, मानसिक रोग दूर करने में सहायक बनता है।

ध्यान विधि—आनापान स्मृति ध्यान की विधि यह है कि पद्मासन पर बैठ कर या शवासन से लेट कर श्वास की गति को स्वाभाविक बनाने के लिए श्वास के साथ मन को लगा देना चाहिए। मन को श्वास के साथ संलग्न कर देने से श्वास की गति में कोई बाधा नहीं आ पाती। जब श्वास अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगे तो साधक को चाहिए कि वह यह निरीक्षण करे कि श्वास कहाँ से उठता है, किस रास्ते से जा रहा है, कहाँ जा रहा है, किस रास्ते से बाहर निकलता है, और कहाँ तक बाहर जाता है, फिर किस प्रकार खिंच कर वापस लौटता है और भीतर जाता है। प्राण-वायु के इस खेल को साक्षी बनकर साधक

देखता रहे किन्तु देखने के लिए श्वास-प्रश्वास की गति से छेड़-छाड़ न करे। उसे अपनी गति से चलने देना चाहिए। हाँ, इतना ध्यान बराबर रखे कि मन श्वास की गति से लगा रहे तनिक भी हटे नहीं। कदाचित् मन हटने लगे या हट जाए तो तुरन्त उसे श्वास की गति के साथ लगा दे।

श्वास की गति देखना ही आनापानस्मृति का मुख्य उद्देश्य है। साधक इस ध्यान-योग में पहले बहुत भटकता और बहकता है, उसे यह ज्ञात ही नहीं हो पाता कि श्वास कहाँ से उठता है, किस रास्ते से चलता है, कैसे बाहर निकलता है, किन्तु यदि साधक हताश और निराश नहीं होता है और निरन्तर क्रियारत रहता है तो श्वास स्वयं उसे अपनी गति और गन्तव्य बता देते हैं और साधक को श्वास की गति का पूरा बोध हो जाता है। यह ध्यान-साधना भूत, भविष्य का ज्ञान कराती है शरीर, मन, बुद्धि को निर्मल बनाती है और अन्त में उद्देश्य की सिद्धि होती है।

जपध्यान-योग इस ध्यान में किसी मन्त्र का जप भी सिद्धि प्रदान करता है। जप पूर्वक ध्यान की पद्धति दो प्रकार की होती है—

एक मानसिक पद्धति, दूसरी भाव प्रधान पद्धति।

१. यदि मन्त्र का जप मन्त्र के अर्थ पर ध्यान रख कर किया जाता है, तो साधक के मन में ऐसी कोई चीज होती है जो उस मन्त्र के देवता के स्वभाव, शक्ति, सौन्दर्य पर एकाग्र होती है, जिसे जप का मन्त्र व्यक्त करता हैं। जप के मन्त्र के द्वारा देवता की शक्ति को चैतन्य के अन्दर ले आना **मानसिक ध्यान पद्धति** का अभीष्ट होता है।

२. और यदि जप हृदय से उठता है, अथवा मन्त्र का बोधार्थ हृदय को झंकृत करता है तो यह **भावप्रधान ध्यान पद्धति** कही जाती है।

यदि साधक किसी मन्त्र का जप करते हुए मंत्रार्थ या मन्त्र के देवता का ध्यान करता है, तो उस जप को मन या प्राण का सहारा अवश्य

मिलता है। यदि जप करते हुए मन में नीरसता आ जाए, प्राणों में चंचलता आ जाए तो समझना चाहिये कि जप को मन का सहारा नहीं मिल पाता है।

जब कोई साधक नियमित रूप से किसी मन्त्र का जप करता है तो कभी-कभी अथवा बहुधा जप स्वयं प्रस्फुटित होने लगता है। जब इस प्रकार मन्त्र-जप का प्रस्फुरण स्वतः होने लगता है तो समझना चाहिए कि आन्तरिकसत्ता के द्वारा जप होने लगा है, इस ढंग का जप अत्यधिक फलदायक होता है। इससे शीघ्र सिद्धि मिलती है।

यह प्रत्यक्ष और अनुभूत है कि यदि कोई साधक किसी मन्त्र का जप किए बिना ध्यान में निरत रहता है तो उसे ध्यानावस्था में ही मन्त्र प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार ध्यान के द्वारा ध्येय वस्तु का अन्तर्दर्शन होता है, उसी प्रकार मन्त्र भी प्राप्त होता है।

संतों, योगियों ने 'ॐ' मन्त्र का जप और ध्यान करने का आग्रह किया है। यह बहुत ही उपयोगी ध्यान-साधना मन्त्र है। 'ॐ' मन्त्र है, यह ब्रह्म चैतन्य के तुरीय से लेकर भौतिक स्तर तक के चारों लोकों को अभिव्यक्त करने वाला शब्द-प्रतीक है। साधक जब किसी मन्त्र का जप करते हुए ध्यान करता है तो मन्त्र की शब्द शक्ति, ध्वनिशक्ति और अर्थशक्ति उसकी चेतना में प्रकम्पन पैदा करती हैं और चेतना को उस वस्तु की सिद्धि के लिए तैयार करती है, जिसका प्रतीक वह मन्त्र होता है। स्वयं वह मन्त्र उसे अपने अन्दर वहन करता है।

ॐ मन्त्र का जप करते हुए जब ध्यान किया जाता है तो 'ॐ' मन्त्र चेतना के सभी स्तरों, सभी परतों का उद्‌घाटन करता है। वह सभी स्थूल, भौतिक वस्तुओं में आन्तरिक सत्ता और अतिभौतिक जगत् में साधक को चेतन का अनुभव कराता है। 'ॐ' मन्त्र का जप-ध्यान करने वाले साधकों का मुख्य लक्ष्य अंतिम अनुभूति ही हुआ करती है।

●

३ | तांत्रिक-संस्कृति

तांत्रिक-विकास का मूल आधार तांत्रिक संस्कृति है। तांत्रिक संस्कृति वैदिक संस्कृति से भिन्न नहीं है। अथर्ववेद तांत्रिक-प्रक्रिया-वितान-वैभव का बीज है। अनेक प्रकार के अंगों की संहति को तंत्र' कहा जाता है। कर्काचार्य ने **कर्मणां युगपद् भावस्तंत्रम्** कहकर यह स्पष्ट घोषित किया है कि कर्मो के युगपद् भाव को 'तन्त्र कहते हैं। यजुर्वेद के **तंत्रायिणे नमः** की निरुक्ति करते हुए भाष्यकार महीधर ने लिखा है कि **एषा वै तंत्रायो य एषस्तपति, एष हीमांल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसञ्चरति**। तात्पर्य यह कि आदित्य (सूर्य) तन्त्रायी है, वही तांत्रिक ज्ञान का प्रसारक है। पञ्चवक्त्र शिव आदित्य ही है, यह निर्विवाद है। तन्त्रशास्त्र शिव के मुख से निर्गत होकर शक्ति में समा गया—**आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजानने**।

अथर्ववेद में जितने भी आथर्वण कर्म हैं, वे सब **पाकयज्ञ** कहलाते हैं। समस्त आथर्वण कर्म **आज्यतंत्र** और **पाक तन्त्र** इन दो भेदों से

विभक्त हैं। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के **सर्वविहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तन्त्र क्रियेल्येके** की टीका में दारिल—केशव ने स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, कि तांत्रिक और वैदिक सभी अनुष्ठान कर्मों में स्रुव से आज्याहुति देनी चाहिए, किन्तु कभी-कभी तांत्रिक कर्मों में हाथ से भी हवन किया जाता है—

सर्वत्र स्रुव होमे नित्यं तंत्रं हस्तहोमे विकल्पेन तंत्रम् (**कण्डिका ६**)
अथर्ववेद में शान्ति, पुष्टि, अभिचार, अद्भुत आदि कर्मों से संबंधित जितनी क्रियाएँ हैं, उन सब की अनुष्ठानपद्धति तांत्रिक है। अथर्ववेद में कृत्यादूषण-निवारण के लिए **निशाकर्म** नाम की तांत्रिक क्रिया की जाती है। आधि-व्याधि, भूतावेश निवारण के लिए अथर्ववेद में मणि-बन्धन का तन्त्र किया जाता है। अथर्ववेद में मणि का तात्पर्य वनस्पतियों के फल, मूल, गोंद वृक्ष की पत्तियों की तावीज बनाकर बाँधना है। इनके पहनने से रोग, दोष, व्याधि भूत-प्रेत बाधा दूर होती हैं। मणिबंधन के अतिरिक्त जलाभिसेचन तांत्रिक क्रिया द्वारा बाधाएँ, रोग-दोष दूर किए जाते हैं। अथर्ववेद के शान्तिकल्प के **शं त आपो हैमवतीः** इस मन्त्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है—

शं त आप इति सूक्तेन तन्त्रभूतमहाशान्तौ नद्यादि समाहृतं जलमभिमंत्रयेत्।

अर्थात् 'शं त आपः' इस सूक्त से तन्त्रभूतमहाशान्तिकर्म में सरिता-सरोवरों के जल से अभिषेचन करना चाहिए।

तन्त्रशास्त्र और वेदों के मन्त्र सर्वार्थसाधक होते हैं। दोनों के मंत्रों के अधिष्ठातृ देवता होते हैं। मन्त्रों में बीजरूप से निहित तन्त्र-संस्कृति ब्राह्मणग्रंथों और कल्पसूत्रों से अंकुरित होकर पुराणों और तांत्रिक ग्रन्थों तक पहुँच कर शाखाओं, प्रशाखाओं में विस्तृत होकर फल-पुष्प समन्वित महाविटप बन गई है।

तांत्रिक संस्कृति में पहले मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवताओं की स्थापना की गई, फिर उन देवताओं के गुण, स्वरूप आदि का चिन्तन कर मन्त्रों के उद्धार का क्रम प्रारंभ किया गया, फिर उन मन्त्रों को यन्त्रों में संयोजित किया गया। तदनन्तर मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवों के ध्यान और उपासना के पाँच अंग—**पटल, पद्धति, कवच, नामसहस्र** और **स्तोत्र** प्रदर्शित किए गए। जिन ग्रन्थों में इस प्रकार के चिन्तन को संगृहीत किया गया, उन्हें तन्त्रशास्त्र या तांत्रिक ग्रंथ कहा गया है।

जिन ग्रन्थों में सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, शवसाधना, पुरश्चरण, षट्-कर्म—साधना तथा ध्यान—ये सात विधान होते हैं, उन्हें **आगम शास्त्र** कहा जाता है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण-प्रधान कर्मों के अनुसार आगम शास्त्र तीन भागों में विभक्त हुए हैं। सतोगुण प्रधान आगम 'तन्त्र' कहे जाते हैं। रजोगुण प्रधान आगम 'यामल' और तमोगुण प्रधान आगम 'डामर' कहे जाते हैं।

पञ्चवक्त्र शिव के मुख से निर्गत होने के कारण आगमों में पाँच आम्नाय माने गए हैं—**पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नानाय, उत्तराम्नाय** और **ऊर्ध्वाम्नाय**। इन पाँचों आम्नायों का विशद वर्णन 'कुलार्णव तन्त्र' में मिलता है। पूर्वाम्नाय सृष्टि रुप है, इसे **मन्त्रयोग** कहा जाता है, दक्षिणाम्नाय स्थितिरूप है, इसे **भक्तियोग**' कहा जाता है। पश्चिमाम्नाय संहाररूप है, इसे **कर्मयोग** कहा जाता है और उत्तराम्नाय अनुग्रहरूप है, इसे **ज्ञानयोग** कहा जाता है। शास्त्रीय विभाजन के अतिरिक्त 'तन्त्र का भौगोलिक विभाजन भी किया गया है। यह विभाजन भारत-भूमि के तीन खण्डों में हुआ है—

१. विन्ध्य क्षेत्र से चटगाँव तक का पूर्वोत्तर क्षेत्र **विष्णुक्रान्त**।

२. इसका उत्तर-पश्चिमी भाग **रथक्रान्त**।

३. विन्ध्यक्षेत्र से दक्षिण समुद्रपर्यन्त भूभाग अश्वक्रान्त कहा गया है।

भौगोलिक विभाजन के अनुसार विभक्त इन तीन क्रान्तों के लिए भौगोलिक दृष्टि रख कर ही चौसठ-चौसठ तन्त्र भी अलग-अलग निर्दिष्ट हुए हैं। जिस 'क्रान्त' के लिए जो-जो तन्त्र निर्धारित हुए हैं, वे देश, काल के अनुसार ही हैं। जिस क्रान्त का जो तन्त्र है, उस तन्त्र की साधना उसी क्रान्त में करने से सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है।

तीनों क्रान्तों का एक प्रयोजन शाक्तों की 'चक्र पूजा' से भी है। शाक्त-साधक 'चक्रपूजा' के लिए जो यन्त्र बनाते हैं, उस यन्त्र में वे तीनों क्रान्तों की स्थापना करके उन क्रान्तों की पूजा करते हैं।

एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, वह यह कि तन्त्र ग्रन्थों के अधिकांश टीकाकारों आगम शाखा के क्रान्तत्रय की सीमाएँ ग़लत निर्धारित की हैं। उनकी यह भूल भारतीय प्राचीन भूगोल और खगोल-शास्त्रीय अध्ययन करने से पकड़ में आ जाती है।

क्रान्त (ट्रापकिल जोन), कर्करेखा (ट्रापिक ऑफ कैन्सर) और मकर रेखा (ट्रापिक ऑफ कैप्री कार्न) इन तीनों के मध्य में भूमध्यरेखा है। कर्क रेखा कराची के पास से गुज़रती हुई दिल्ली के दक्षिण से जाती है और मकर रेखा मेडागास्कर के दक्षिण में है। भारत का समस्त भूभाग भूमध्यरेखा के ऊपर है। इस विवरण का समर्थन नीलतन्त्र के निम्नांकित श्लोक में भी मिलता है—

रेवायाः दक्षिणे भागे, हयक्रान्तं महावनम्।
याम्ये देवनदीतीरे भागीरथ रथं स्मृतम्।
ऊर्ध्वे विष्णुपदी भागे विष्णुक्रान्तं तपोवनम्।
मर्यादा स्कन्ददेवस्य पूजा चक्रे विधीयते॥

तन्त्र-साधना में भाव और आचार

तन्त्र में 'भाव' गुरुत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द है। वस्तुतः भाव-पदार्थ मन का धर्म विशेष है, वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल

दिङमात्र होता है। जिस तरह गुड़ की मिठास जिह्वा से जानी जाती है, वाणी से नहीं, उसी प्रकार भाव का विभाव केवल मन से ही अनुभव करने योग्य होता है, शब्दों द्वारा नहीं।

तांत्रिक-साधना में भाव ही कारण होता है। किसी मन्त्रका जप लाखों, करोड़ों की संख्या में किया जाए, हवन किया जाए, शारीरिक यातनाएँ भोग कर साधना की जाए, किन्तु बिना भाव के कथमपि सिद्धि या सफलता नहीं मिलती। ज्ञान की विशेष अवस्था ही भाव है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण भेद से भाव या ज्ञान अवस्था क्रमशः दिव्य, वीर और पशु—तीन प्रकार की होती है। इसी को उत्तम, मध्यम और अधम भी कहा जाता है। मनुष्य के स्वभाव और चरित्र के अनुसार साधक के उपर्युक्त भाव तीन प्रकार के माने जाते हैं। साधक अपनी प्रवृत्ति के आधार पर उत्तम, मध्यम या अधम कोटि का होता है और उसी कोटि की उसकी साधना भी होती है।

तीनों प्रकार के भावों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. अज्ञानावस्था को पशुभाव कहा जाता है। अज्ञानावस्था में साधक के हृदय में अद्वैत ज्ञान का उदय न होने के कारण उसकी मानसिक स्थिति तमोगुणी रहती है, इस कारण उसमें पशु भाव रहता है। यह भाव दो प्रकार का होता है, सांसारिक मोहजाल में फंसा हुआ साधक अधम पशु होता है और सद्धर्मपरायण, क्रियानिष्ठ, भगवन्निष्ठ साधक उत्तम पशु होता है।

पशु का अर्थ है अज्ञानी। भगवान् शिव जीव के पशुभाव (अज्ञान) को दूर करते है, इसलिए उन्हें पशुपति कहा गया है।

२. जो साधक अद्वैत ज्ञानामृत सरोवर के एक बूंद का भी रसास्वादन कर लेता है, वह वीर पुरुष की भाँति अज्ञान-रज्जु को तोड़ने में सफल होता है। तब वह वीरभाव—सम्पन्न साधक माना जाता है।

वीरभाव–सम्पन्न साधक द्वैतभावना से अद्वैतभावना की ओर बढ़ता है।

३. जो साधक द्वैतभाव को विनष्टकर अपने उपास्य देवता से अद्वैत सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो वह दिव्य भाव-सम्पन्न कहा जाता है।

उपर्युक्त तीन भावों से उत्पन्न साधकों के सात आचार होते हैं—

१. **वेदाचार**—वैदिक विधि से देवार्चन करना, मद्यमांस का सेवन न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, लोभ, मोह से दूर रहना, एकान्त, शान्त पुण्यक्षेत्र में रहकर शुद्धभाव से ध्यान, उपासना साधना में निरत रहना, काम क्रोध रहित, निन्दा-स्तुति रहित साधनारत रहना वेदाचार है।

२. वेदाचार की भाँति संयम, नियम पालन करना, कुटिलता से दूर रहना भगवान् विष्णु की अर्चना करना, सभी कर्मों में समर्पण भाव रखना और सम्पूर्ण जगत् को विष्णुमय समझना वैष्णवाचार है।

३. वेदाचार की भाँति संयम-नियम पूर्वक शिव और शक्ति की साधना, उपासना करना **शैवाचार** है, किन्तु इसमें बलिदान किया जाता है।

४. भगवती परमेश्वरी की उपासना वेदाचार क्रम से करना। विजयादशमी की रात में आचार की दीक्षा ग्रहणकर अनन्यधी होकर मूलमन्त्र जपना **दक्षिणाचार** है। दक्षिणामूर्ति का आश्रयण करने से इसे दक्षिणाचार कहा गया है।

५. स्वधर्म-निरत साधक पञ्च तत्त्वों (पञ्चमकारों) से भगवती देवता की अर्चना करता है। अष्टपाशों से रहित साधक साक्षात् शिव बनकर परम प्रकृति भगवती महाशक्ति की साधना करता है। इस प्रकार के आचार को **वामाचार** कहा गया है।

६. शम, दम युक्त होकर योगयुक्त साधक अपने में परमात्मभाव

रखकर योगभाव से जव साधना करता है तव उसकी वह साधना-पद्धति **सिद्धान्ताचार** कहलाती है ।

७. जिस प्रकार शिशु सब कुछ भूल कर माता के स्तनों का पान करता है, उसी प्रकार साधक ज्ञानमार्ग में प्रविष्ट होकर सतोगुण से समन्वित होकर आचार विहीन होने पर भी ब्रह्मभाव में निरत रहता है, तब पूर्णानन्द-परायण की वह साधना पद्धति **कौलाचार** कहलाती है ।

भावचूड़ामणि में 'कौल' का लक्षण वतलाते हुए कहा गया है कि 'कीचड़ और चन्दन में पुत्र और शत्रु में, श्मसान और देवगृह में, कञ्चन और कंकड़ में जो समान भाव रहता है, वह **कौल** है ।

तन्त्र की भाषा अधिकांश सांकेतिक होती है । सर्वसाधारण के लिए तान्त्रिक शव्दावली का अर्थ लगाना दुरूह होता है । यही कारण है कि 'कौल' जैसे पारिभाषिक शव्द का तात्पर्य समझने में अक्सर संशय उत्पन्न हो जाता है । वस्तुतः 'कुल' शव्द से कौल बनता है । कुल शव्द का अर्थ शरीरस्थित षट्चक्रों में से एक चक्र मूलाधार है । कुल में से 'कु' शव्द पृथिवी तत्त्व का बोधक है । पृथिवी तत्त्व में लीन होना 'कुल' है । कुल शव्द मूलाधार चक्र है। 'कुल' को 'त्रिकोण' या 'योनि' समझना चाहिए । वह योनि ही 'मातृका' है और वर्णात्मिका परावाक् अधिष्ठित शक्ति **मातृयोनि** है—यह भी पारिभाषिक शव्द है । जो साधक इस मातृयोनि से कुण्डलिनी शक्ति को ऊपर मणिपूरचक्र से उठाता हुआ उत्तरोत्तर सहस्रार चक्र तक उठाकर प्रत्येक चक्र में कुण्डलिनी के साथ जीवात्मा की समरसता स्थापित कर आनन्द का उपभोग करता है, वही साधक 'कौल' है और उसकी पद्धति 'कौलाचार' है ।

तांत्रिक-साधना के एक समुदाय में 'वामाचार' को ही कुलाचार कहा जाता है । वाममार्गी अपनी वाह्य-पूजा में मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य' मुद्रा—इन पञ्चमकारों का उपयोग करते हैं । अपने इष्टदेव को ऐसे

पूजा द्रव्य समर्पित कर वह परमपद प्राप्त करने का विश्वास रखते हैं। देवीभागवत में इस प्रकार के कुलाचार वेदविरुद्ध मानकर द्विजातियों के लिए उसका निषेध किया गया है—

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजोभवेत् ।
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ।।
कौलोनाम पथो हेयो नित्यं गौरि द्विजातिभिः ।

वाम मार्ग और दक्षिण मार्ग—आधार चक्र के वाह्य और अभ्यन्तर स्थित कुलकुण्डलिनी का समाराधन 'मिश्र कौल पूजन' है। यहाँ पर कौल' शब्द रूढ़ है। मिश्रकौल पूजकों द्वारा पूजित भगवती 'कौलिनी' कहलाती है। इस पूजन में पंचमकार को प्रत्यक्ष ग्रहण किया जाता है और समयाचार पूजन-पद्धति में पंचमकार को मानसिक रूप से ग्रहण किया जाता है। कौलमत में मद्य, मांस, मैथुन आदि का सेवन प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है और समयाचार मत में मद्य से मदिरा का ग्रहण न कर सहस्रदलकमल से निर्गत अमृतविन्दु माना गया है उसीका पान मद्यपान है। कौलमत में पशु का वध कर उसका मांस भक्षण किया जाता है किन्तु समयाचार मत में पशु से तात्पर्य काम, क्रोध आदि का ग्रहण किया गया है और इन पशुओं को ज्ञान की तलवार से वध कर उनका मांस भक्षण किया जाता है। समया चारमत में मत्स्य को इन्द्रियों का निरोध माना गया है। आशा, तृष्णा आदि मुद्राएँ हैं और मन तथा सुषुम्णा का मिलन ही मैथुन है।

दक्षिणमार्ग में पंचमकार को इस प्रकार स्वीकार किया गया है— १. मनन, २. मन्त्र, ३. मन, ४. मौन और ५. मुद्रा। शाक्त-साधना चाहे वामाचार की हो या समयाचार अथवा दक्षिणाचार की—सब में पंचमकार स्वीकार किया गया है और पंचमकार के स्वरूप, लक्षण की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की गई है। साधक जिस आचार या मार्ग का अवलम्बन कर निष्ठापूर्वक उपासना करता है, उसे सिद्धि अवश्य मिलती है।

दीक्षा और अभिषेक—तांत्रिक संस्कृति में दीक्षा एवं अभिषेक एक रहस्यमयी क्रिया होती है। शाक्त सम्प्रदाय में शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षा, साम्राज्यदीक्षा आदि गहन साधनाएँ तथा क्रियाएँ की जाती हैं। दीक्षा और अभिषेक के विचित्र और विविध भेद हैं। पहले दीक्षा होती है फिर शाक्ताभिषेक होता है इसके बाद पूर्णाभिषेक होता है। दीक्षा और अभिषेक में मन्त्र की प्रधानता और विशेषता रहती है। पूर्णाभिषेक और क्रमदीक्षाभिषेक गम्भीर और रहस्यमय क्रिया-व्यापार हैं। साधक का जब शाक्ताभिषेक हो जाता है, तो उसके लिए शक्ति का मार्ग प्रशस्त बन जाता है; शाक्ताभिषेक के बाद पूर्णाभिषेक का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है।

दीक्षा मन्त्र—सामान्यतया साधक को दीक्षा देते समय जो मन्त्र दिया जाता है, उसे बीजमन्त्र कहा जाता है। जप और साधना द्वारा वही बीजमन्त्र विकसित और सशक्त होकर साधक के समस्त व्यक्तित्व को अभिभूत कर लेता है। नित्य नियमानुसार जप, हवन करने से मन्त्र विकसित होता है। सन्ध्या, न्यास, पूजन और हवन साधना के अंग हैं। साधक को दीक्षा देने से पहले गुरु चक्रों के आधार पर गणित करके मन्त्रों का वर्गीकरण करता है, फिर साधक के स्वभाव, चरित्र और प्रवृत्ति के अनुकूल मन्त्र द्वारा उसे दीक्षित करता है। ऐसा न करने से मन्त्र-साधना निष्फल हो जाती है।

सामान्यतया मन्त्रों का वर्गीकरण निम्नांकित पद्धति से किया जाता है,

मन्त्रों को चार श्रेणियों में रखा जाता है—

१. सिद्धमन्त्र—जो साधक के लिए मित्रवत् हितकारी होते हैं।

२. साध्यमन्त्र—जो साधक के लिए सेवक के रूप में होते हैं।

३. सुसिद्धमन्त्र—जो साधक के लिए रक्षक बनते हैं।

४. अरिमन्त्र—जो साधक के लिए शत्रुवत् होते हैं।

वस्तुतः मन्त्र वाचक शक्ति है, उसके द्वारा साधक वाच्य शक्ति को प्राप्त करता है। मन्त्र की साधना द्वारा मन्त्रात्मिका सगुण शक्ति जाग्रत होती है। वह जागकर साधक के आवरणों को हटा देती है और उसे वाच्य शक्ति (इष्टदेवता) का साक्षात्कार होता है।

जप-रहस्य—किसी शब्द का बार-बार उच्चारण करना जप है। जप करने से साधक की प्रसुप्त चेतना का जागरण होता है। यदि साधक की सोई हुई चेतना कुछ दिन के जप से जाग्रत नहीं होती है तो निराश नहीं होना चाहिए। तन्मय होकर मन्त्र का जप करते रहना चाहिए। चेतना अवश्य जागेगी। जाग्रत चेतना ही साधक को इष्ट का साक्षात्कार कराती है। मन्त्र चैतन्य-स्वरूप होते हैं, उनका बार-बार उच्चारण करने से साधक के संस्कार बनते हैं और जब संस्कार शुद्ध बनते हैं तो चेतना शुद्ध होती है तब वह मन्त्र साकार बन जाता है अथवा अपने अर्थ के अनुकूल रूप में प्रतिबिम्बित होता है। जप द्वारा साधक के विचार केन्द्रित होते हैं और चित्तवृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं।

सामान्यतया जप तीन प्रकार का होता है—

१. **वाचिक**—जो मन्त्र जप में उच्चारण करते समय सुनाई पड़े वह वाचिक है। मन्त्र का वाह्य उच्चारण वाचिक कहलाता है।

२. **उपांशु**—मन्त्र का जप करते समय जब शब्द मुख से बाहर नहीं निकलते हैं, केवल जीभ और ओंठ हिला करते हैं; वह जप वाचिक की तुलना में श्रेष्ठ है।

३. **मानस**—जब मन्त्र का जप मन ही मन किया जाता है। न नाद होता है और न श्वास। जीभ, ओंठ आदि हिलते नहीं। मन्त्र जप करते समय मन इष्टदेव के ध्यान में लगा रहता है। ऐसा जप मानस जप है। यह सर्वश्रेष्ठ जप साधना को शीघ्र सफल बनाता है।

वाह्य और अभ्यन्तर भेद से जप दो प्रकार का होता है। वाह्य जप वैखरीनाद का विलास है और अभ्यन्तर जप मध्यमानाद का

विलास है। वाह्य जप की अपेक्षा अभ्यन्तर जप श्रेष्ठ होता है। अभ्यन्तर जप सूक्ष्म स्वरूप से, कंठ-जप-स्वरुप से बैखरीजप उद्भावित होकर मध्यमा भूमि में प्रकट होता है। अभ्यंतर जप के अभ्यास से मन्त्रों के वर्णों का गुंजन अनायास अन्दर ही अन्दर होने लगता है। नादरूप में परिणत महाशक्ति का प्रस्फुरण साधक के हृदय में होने लगता है, फिर वही प्रस्फुरण प्रकाश बन जाता है। इसके बाद महाशक्ति का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकाश का साक्षात्कार करने के लिए तांत्रिक साधक तन्त्र मार्ग का, योगी योगाभ्यास का, वेदान्ती उपनिषद्-उपदिष्ट मार्ग का आश्रयण करते हैं और निरन्तर शब्द ब्रह्म के ध्यान में निरत रहते हैं।

सिद्ध पुरुषों का मत है कि जप काल में जपे जाने वाले मन्त्र के अवयव में पाँच अवस्थाओं, छह शून्यों और सात विषुवों का चिन्तन करना चाहिए। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा स्वविषय ग्रहण-व्यापार जागरावस्था है, इसे प्रकाश रूप में चिन्तन करना चाहिए। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार प्रकार के अन्तःकरण के व्यवहार को स्वप्नावस्था कहा जाता है, इस अवस्था का चिन्तन साधक को अनाहत-चक्र से करना चाहिंए।

आत्मसुख, अज्ञान विषयक अविद्या में लीन जीव का ज्ञान सुषुप्तावस्था है, इस का चिन्तन जपकाल में ललाट स्थित तृतीय विन्दु में करना चाहिए।

चित्-अभिव्यंजकनाद का वेदन तुरीयावस्था है, इस आवस्था का चिन्तन जपकाल में प्रकाश अर्द्धचन्द्ररोधिनी नादात्मक मन्त्रों की ध्वनि से करना चाहिए।

आनन्दैकघनस्वरूपा मनुष्य वाग्गोचरा तुर्य्यातीत अवस्था का चिन्तन नादान्तशक्ति व्यापिनी के रूप में मन ही मन करना चाहिए। इससे ऊपर अब कोई अवस्था नहीं होती है।

अजपाजप—व्याकरण से अजपाजप का अर्थ है—जिसका उच्चारण मुख से न करके श्वास-प्रश्वास की गति के साथ जपना है, किन्तु तन्त्र-साधना में अजपाजप का अर्थ है—अज+पा=अज—ब्रह्म, उससे अभिन्न जीवात्मा की जो श्वाव-प्रश्वास के गमनागमन द्वारा पाति—रक्षा करता है, वह अजपाजप है। हंसात्मिका भगवती ही 'अजपा' है उसका जप अजपाजप है। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अजपाजप का मन्त्र है—

हं सः

इस मन्त्र में देवता चन्द्रचूड शिव हैं। तन्त्रसार के अनुसार इस मन्त्र के ऋषि हंस है और देवता परमहंस अर्धनारीश्वर का ही रूप हंस और परमहँस है।

अजपाजप मन्त्र का विनियोग—अस्य अजपा जपस्य मंत्रस्य परमहंसो देवता, हंसः ऋषिर्गायत्री छन्दः, हं बीजं, अः शक्तिः, सोऽहं कीलकम्, प्रणवस्तत्त्वम्, उदात्तः स्वरो जपे विनियोगः सिद्धः।

यह विनियोग साधाक को मोक्ष-कमना के लिए करना चाहिए।

अजपा जप करने से पहले अंगन्यास, करन्यास षडङ्गनान्यास आदि करके मुद्राएँ प्रदर्शित करने के बाद जप प्रारंभ करना चाहिए। जप करनेसे पूर्व मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक मूलमन्त्र का ध्यान करना चाहिए। षट्चक्र स्थित गणेश, विष्णु, शिव आदि को प्रणाम करके तीन प्राणायाम मूल मन्त्र से करके जप प्रारंभ करना चाहिए।

देवताओं का ध्यान-मन्त्र यह है—

गणेश ब्रह्माविष्णूंश्च शिवजोव परेश्वरान्।
षट्चक्रदेवतां नौमि मूर्न्धि श्रीगुरवे नमः॥

मनुष्य २१६०० संख्यक साँसें लिया करता है। अजपाजप की संख्या श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुसार २१६०० होती है। इसका जप का नियम बहुत जटिल है। किस समय, कितने समय तक, किस चक्र में

ध्यान स्थिर कर मूल मन्त्र का जप किया जाए, इसकी सारिणी इस प्रकार है—

सूर्य-उदय	मिनट	से०	घ०	मि०	से०	देवता	चक्र	संख्या
६	४०	४०	०.	४०	४०	गणपति	मूलाधार	६००
१	२०	२०	६	४०	०	ब्रह्मा	स्वधिष्ठान	६०००
८	८	०	६	४०	०	विष्णु	मणिपूर	६०००
२	४०	४०	६	४०	०	रुद्र	अनाहत	६०००
३	४६	४०	१	६	४०	जीवात्मा	विशुद्ध,	१०००
४	५३	२०	१	६	४०	परमात्मा	आज्ञा	१०००
६	०	०	१	६	४०	गुरु	सहस्रार	१०००

तांत्रिक सम्प्रदाय और उनके उपास्य देवता—तांत्रिक संस्कृति में शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य—ये पांच सम्प्रदाय मुख्य हैं। इन सम्प्रदायों में क्रमशः शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य और गणपति की साधना, उपासना की जाती है। बाद में बौद्ध और जैन सम्प्रदाय भी तांत्रिक संस्कृति में सम्मिलित हुए हैं। बौद्ध और जैन, सम्प्रदाय में शाक्त तन्त्र की साधना प्रचलित है।

प्रत्येक सम्प्रदाय में अपने अपने उपास्य (इष्ट) देवता की विभिन्न रूपों में कल्पना की गई है और उनके विभिन्न नाम तथा उनकी विभिन्न साधना-पद्धति है। जैसे शैव सम्प्रदाय में शिव एक ही मुख्य देवता है, साधना-भेद से इनकी शिव, सदाशिव, ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात, मृत्युंजय, महेश, नीलकण्ठ, अर्द्धनारीश्वर, पंचानन, पशुपति, नीलग्रीव, चण्डेश्वर, कपाली आदि अनेक ध्यान मूर्तियां हैं।

इन सम्प्रदायों में शिव, विष्णु आदि प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त अपने अपने सम्प्रदाय सिद्धान्त के अनुकूल अनेक देवी, देवताओं की साधना की जाती है। जैसे शैव सम्प्रदाय में वटुक भैरव, कालभैरव, रुरु भैरव, क्षेत्रपाल आदि की साधना की जाती है।

शाक्त सम्प्रदाय की प्रधान उपास्य देवता दशमहाविद्याएँ हैं—काली, तारा, षोडशी, भैरवी, मातंगी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी और कमला। यही दसदेवियाँ महाविद्या के नाम से विख्यात हैं। इन दस देवियों के अनेक नाम और रूप हैं, जिनकी साधना की जाती है।

अभिचारकर्म—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, और वशीकरण में केवल शाक्त देवता की उपासना का विधान है।

तांत्रिक संस्कृति में यन्त्र—तांत्रिक-साधना में यन्त्र बना कर यन्त्राधिष्ठत देवता का पूजन किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि यन्त्र में देवता का निवास रहता है। देवता का यन्त्र अंकित कर उसका पूजन करने से अथवा यन्त्र धारण करने से साधना निर्विघ्न समाप्त होती है। पूजन-यन्त्र सामान्यतया चन्दन से अंकित किए जाते हैं। अष्टगन्ध (अगर, तगर, केसर, कस्तूरी, कपूर, लालचन्दन, सफेद चन्दन और गोरोचन) तथा अनार की कलम से भी यन्त्र लिखे जाते हैं।

सामान्य यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—एक धारण किया जाता है और दूसरा पूजन करने के लिए होता है। जिस देवता का यन्त्र बनाया जाए, उस यन्त्र द्वारा उसी देवता की पूजा करनी चाहिए। गले में, भुजा में धारण किए जाने वाले यन्त्र भोजपत्र अथवा प्रयोजन के अनुसार तरु-पल्लवों या अष्टधातु के ताबीज पर लिखे जाते हैं धारण किए जाने वाले यन्त्रों का पहले संस्कार किया जाता है फिर उनमें देवता की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है, इसके बाद अभिषेक किया जाता है। अभिषेक के बाद इष्ट देवता के बीजमन्त्र से हवन और जप करके यन्त्र को सिद्ध किया जाता है। पंचगाव्य, पंचामृत और दूध तथा गंगा जल से क्रमशः यन्त्र का संस्कार ह्रीं बीज पढ़ते हुए किया जाता है। संस्कार के बाद अष्टगंधमिश्रित जल से स्नान कराया जाता है स्नान के बाद गंध, अक्षत, पुष्प अर्पित कर यन्त्रगायत्री (यन्त्रराजाय विद्महे महायंत्राय धीमहि तन्नोयन्त्रः प्रचोदयात्) को पाँचबार पढ़कर कुश के अग्रभाग में यन्त्र

को रखकर १०८ बार गायत्री मन्त्र का जप करके यन्त्र के अधिष्ठातृ-देव का आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा करके यन्त्राधिष्ठत देवता का षोड़शोपचार पूजन करके मूल बीजमन्त्र से हवन कर बीजमन्त्र का जप किया जाता है तदनन्तर उसे धारण करना चाहिए।

यन्त्र अगर जमीन से स्पर्श कर जाए अथवा शव से स्पर्श कर जाए, या उसका कोई उल्लंघन कर जाए अथवा वह कहीं से कट-फट या विदीर्ण हो जाए तो उसे नहीं धारण करना चाहिए।

सोने की तावीज में भरा हुआ यन्त्र जीवन भर धारण किया जा सकता है। चाँदी की तावीज में निहित यन्त्र २० वर्ष तक धारण किया जा सकता है और ताम्र की तावीज में निहित मन्त्र छह वर्ष तक धारण किया जा सकता है।

●

४ | मंत्र-साधना

मंत्र शब्द का व्यवहार व्यापक परिवेश में किया जाता है। वैदिक ऋचाओं के हर छन्द को मंत्र कहा जाता है। देवी-देवताओं की स्तुतियाँ यज्ञ, हवन आदि के लिए रचे गए वाक्यों तथा शब्द-प्रतीकों को भी मंत्र कहा जाता है, किन्तु तंत्र शास्त्र में मंत्र शब्द भिन्न अर्थ रखता है। प्रत्येक अक्षर, पद या पदसमूह को तंत्रशास्त्र मंत्र के रूप में नहीं स्वीकार करता है, जिस अक्षर या पद अथवा पदसमूह में किसी देवता या शक्ति की अभिव्यक्ति की जाती है, वही अक्षर, पद या पदसमूह उस देवता या शक्ति को प्रकट करने का सामर्थ्य रखता है। इसलिए जो शब्द, पद या पदसमूह जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है, वह उस देवता या रूप का मंत्र माना जाता है।

मंत्रों में जो स्वर, व्यंजन, नाद, विन्दु का विन्यास किया जाता है, देवता के विभिन्न रूपों को प्रकट करता है। यद्यपि अन्य शास्त्रों

की भाँति तंत्रशास्त्र भी शब्द को ब्रह्म मानता है किन्तु साथ ही वह ब्रह्म की विभिन्न कलाओं या शक्तियों को प्रकट करने के लिए विशिष्ट वर्णसमूह की आवश्यकता का भी अनुभव करता है। इस विषय को इस प्रकार सहज ढंग से समझा जा सकता है—

जैसे सभी मनुष्य चेतन-स्वरूप हैं, तथापि व्यक्तिविशेष को प्रकट करने के लिए एक विशेष संकेत अथवा नाम की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार दैवी-शक्तियों को प्रकट करने के लिए संकेत और नाम निर्धारित हुए हैं। भिन्न-भिन्न दैवी-शक्तियों के भिन्न-भिन्न नामों को ही मंत्र कहा जाता है। मंत्राक्षरों में नाद, विन्दु दैवी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए लगाए जाते हैं।

सुनाई पड़ने वाली स्थूल ध्वनि को **वैखरी** और उसके सूक्ष्म रूप को **पश्यन्ती** कहा जाता है। पश्यन्ती में विचारों का प्रथम उन्मेष होता है। पश्यन्ती के ऊपर भी एक **परावाक्** है, जो सबका कारण है। वैखरी शब्द या वाह्य ध्वनि प्राणशक्ति का एक रूप है। वैखरी का मूल स्रोत कुंडलिनी है। कुण्डलिनी में एक ध्वनि गूँजती रहती है, जिसका वर्णात्मक या शब्दात्मक रूप नहीं होता है। उस ध्वनि को **अनाहतनाद** कहते हैं। वह अनाहत ध्वनि जब कण्ठ, तालु आदि स्थानों से टकराती हुई बाहर निकलती है, तो वही वर्णात्मक ध्वनि बन जाती है। आहत का अर्थ है—'ठोकर खाई हुई।' जब कुण्डलिनी में गूँजती हुई अनाहत ध्वनि कण्ठ, तालु आदि स्थानों से टकराती है तो वह आहत ध्वनि कहलाती है। जैसे वाह्य आकाश में वायु का स्पन्दन प्राप्त कर जो तरंगें उठती हैं, वह विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ बन जाती हैं, उसी प्रकार शरीरस्थ आकाश में प्राण-वायु की हलचल से ध्वनियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं।

तांत्रिक साधकों ने बताया है, कि 'शब्द (वैखरी) चित् शक्ति के स्थूलकाय हैं जो साधक को नाना प्रकार की सिद्धियाँ देते हैं। इस समस्त सृष्टि के मूल में परमात्मा का शब्द है। जैसे विशाल ब्रह्माण्ड

शब्द-शक्तियों के रूप में उद्बुद्ध हो रहा है, उसी प्रकार वह स्थूल छोटे-छोटे पिण्डों में भी प्रकट हो रहा है। शब्द के इस सूक्ष्म रूप के साथ साधक जब विश्वव्यापी रूप की चेतना ले आता है, तभी वह मंत्र को क्रियाशील बना सकता है। ईश्वर (अपरशिव) की यह रचनात्मक शक्ति ही समस्त विचारों का उत्स है। विभिन्न देवता शिव की विभिन्न शक्तियों के ही रूप हैं। मंत्रों द्वारा इन देवताओं को जाग्रत किया जा सकता है।''

वृहद्‌गन्धर्वतंत्र का कहना है कि 'विधिपूर्वक मंत्रों का बार-बार उच्चारण करने से वही संस्कार बन जाता है और सब ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं। अन्य ध्वनियों के संस्कार लुप्त हो जाने पर आत्मा से देवता का भेद करने वाले आवरण हट जाते हैं और मंत्र-साधक स्वयं देवतारूप हो जाता है।'

मंत्र की सिद्धि का तात्पर्य है, मंत्र को सशक्त और जाग्रत बनाना। जाग्रत मंत्र साधक को अभीष्ट फल प्रदान करता है प्राणतोषिणी में बताया गया है कि 'मंत्र-साधक जो भी चाहता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है।'

मंत्रों में बीजाक्षर और नाद के प्रयोग

जैसे किसी व्यक्ति की पहचान के लिए उसका एक संकेत रख दिया जाता है, जिसे नाम कहते हैं, उसी प्रकार मन्त्रों में उनके अधिष्ठातृ-देवता का एक संकेत रहता है, जिसे बीज कहते हैं। जैसे 'ह्रीं'; 'श्रीं', 'क्रीं', 'ऐं' ये बीजाक्षर क्रम से मायाबीज, श्रीबीज, काली बीज और सरस्वती बीज कहे जाते हैं। मन्त्रों के अन्त में 'हुम्' वर्मबीज, 'हम्' कूर्च बीज 'फट्' अस्त्र बीज लगाए जाते हैं—ये सब संकेत हैं। इन बीजों या संकेतों का प्रयोग मन्त्र-सिद्धि में या देव-पूजन में किया जाता है। कुछ देवताओं के नाम प्रथम अक्षर से बनाए जाते हैं। जैसे, राम से

'रां', गणेश से 'गं', हनूमान से 'हं', दुर्गा से 'दुं' । अधिकांश मन्त्रों के आदि में 'ॐ' बीज लगाया जाता है, यह परमात्म-शक्ति का संकेत है। इसके द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों कार्यों की अभिव्यक्ति होती है। जैन और बौद्ध जैसे अनीश्वरवादी मतों के मन्त्रों में भी ॐ लगाया जाता है। उक्त मतावलंबी इसे अपने-अपने अभीष्ट देवता का संकेत मानते हैं।

प्रत्येक बीजाक्षरों में अनुस्वार (ं) या अनुनासिक (ँ) लगाया जाता है। इसे 'नाद' कहा जाता है। नाद से अक्षर का शक्ति-तत्त्व प्रकट होता है। तात्पर्य यह कि ईश्वर की जो शक्तियाँ बाह्य जगत् की सृष्टि से पहले अप्रकट रहती हैं, उन्हें नाद द्वारा प्रकट किया जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि 'नाद' अभिव्यक्त देवताओं के भिन्न-भिन्न रूप हैं। उदाहरण के लिए 'ह्रीं' बीज को लीजिए ? यह भुवनेश्वरी देवी का माया बीज है। बरदातन्त्र का कहना है कि 'ह्रीं' में ह् = शिव हैं; र = प्रकृति या शक्ति है, ई = महामाया है और म् = (नाद और विन्दु) तुरीया अवस्था है। ह्रीं बीज का जप करने वाला साधक तुरीया और कारण शक्ति का आवाहन करता है, इसी शक्ति से अन्य सभी रूप प्रकट हुए हैं।

मूलमंत्र और उनके भेद

देवता के मुख्य मन्त्र को मूल मन्त्र कहा जाता है। यह 'सौर' और 'सौम्य' दो भागों में विभक्त किया जाता है। सौर मंत्र पुंल्लिग होते हैं और सौम्य मन्त्र स्त्रीलिङ्ग। इनके अतिरिक्त कुछ मन्त्र नपुंसकलिङ्ग भी होते हैं। मन्त्रों में इस प्रकार का लिंगभेद उनकी उग्रता और उनके भावों के आधार पर किया जाता है। जिन मन्त्रों के अंत में 'हुं' और फट्' लगते हैं, वे पुंल्लिङ्ग होते हैं, तथा स्वाहा स्त्रीलिंग मन्त्रों में और नमः नपुंसक लिंग के मन्त्रों में लगाया जाता है।

नित्यातंत्र में अक्षरों की संख्या के आधार पर मन्त्रों के नामकरण

किए गए हैं। एक अक्षर का 'बीजमन्त्र' होता है। इसके बाद के अक्षरों की संख्या वृद्धि के अनुसार **'पिण्ड'**, **'कर्त्तरी'**, **'मंत्रमाला'** आदि नाम मन्त्रों के होते हैं।

मन्त्र तेजोमय शक्ति के समुच्चय होते हैं और बीजाक्षर शक्ति पुंज होते हैं। मन्त्र मानव से परे शक्ति को जाग्रत करते हैं। प्रत्येक मन्त्र में दो शक्तियाँ निहित रहती हैं।' वाच्य शक्ति और 'वाचक शक्ति'। मन्त्र का प्रतिपाद्य देवता वाच्य शक्ति है और मन्त्रमय देवता वाचक शक्ति है जैसे किसी मन्त्र का देवता 'दुर्गा' है तो उस मन्त्र की वाच्य शक्ति महामाया होगी। अपरशक्ति निर्गुण है और वाचिकाशक्ति सगुण है वाचिकाशक्ति ही मन्त्र सिद्धि के लिए साधनभूत होती है। जब मन्त्र में निहित मन्त्रस्वरूप-शक्ति साधना द्वारा चैतन्य होती है, तब वह साधक के समक्ष परम शक्ति का उद्‌घाटन करती है, जिससे ब्रह्माण्ड का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है।

फलतः दो प्रकार की शक्तियाँ हुईं—मन्त्रशक्ति और साधना शक्ति। साधक में साधना द्वारा उत्पन्न साधनाशक्ति जब मन्त्र शक्ति से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ती है, दोनों शक्तियाँ मिलकर एक हो जाती हैं तब मन्त्र की सिद्धि होती है।

मंत्र-जागरण प्रक्रिया

मन्त्र की साधना में मन्त्र का अर्थ और मन्त्र की प्रक्रिया अवश्य समझनी चाहिये। इसे जाने बिना मन्त्र की साधना निरर्थक हो जाती है। तंत्र का यह सिद्धान्त है कि मन्त्र सुप्त रहते हैं। उन्हें जगाने के लिए मन्त्रविदों ने कुछ क्रियाएँ निर्धारित की हैं। इन क्रियाओं के करने से मन्त्र का उच्चारण शुद्ध हो जाता है। मुख्यतया नौ क्रियाएँ हैं—**मुखशोधन, जिह्वाशोधन, मंत्रशोधन, कुल्लुका, मणिपूर सेतु, निद्राभंग, मंत्रचैतन्य, मंत्रार्थ भावना**। इन क्रियाओं के नाम पारिभाषिक हैं। इन्हें करने के लिए गुरु से सहायता लेनी चाहिए। जिस क्रिया मन्त्र-

साधना में जिस देवता का मन्त्र होगा, उसके अनुरूप **मुख शोधन** मन्त्र होता है । मन्त्र अगणित हैं, सभी की क्रियाएँ तांत्रिक ग्रंथों में नहीं रहती हैं, ये सब गुरु के द्वारा सीखी और समझी जाती हैं ।

मुखशोधन जैसे कोई साधक भैरव मन्त्र की साधना करता है तो उसे ॐ 'ह्सौः' इस बीज मन्त्र के जप से 'मुखशोधन' करना चाहिए । इसी तरह जिस देवता का जो मन्त्र होगा, उसका 'मुखशोधन' मन्त्र भी भिन्न होगा ।

'जिह्वाशोधन' की क्रिया यह है कि जिस देवता के मन्त्र की साधना की जाए, उस देवता के मूल मन्त्र के एकाक्षर बीज का तीन बार जप करे । फिर तीन बार प्रणव (ॐ) का जप कर पुनः एकाक्षर बीज का जप करे पश्चात् मूल मन्त्र का जप सात बार करे । जैसे कोई साधक वटुकभैरव की साधना करे तो साधना प्रारम्भ करने से पूर्व उसे इस प्रकार 'जिह्वा शोधन' करना चाहिए वटुकभैरव मूलमन्त्र है—

ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं

इस मन्त्र का बीजाक्षर 'ह्रीं' है । जिह्वा शोधन करने से पहले एकाक्षर बीज 'ह्रीं' का तीन वार जप करे, फिर तीन बार 'ॐ' का जप करके पुनः तीन बार ह्रीं का जप करे । तत्पश्चात् मूल मन्त्र का जप सात बार करने से जिह्वा शोधन होता है ।

मन्त्र-शोधन के लिए जिस मन्त्र को सिद्ध करना हो उसके आदि और अन्त में 'ॐ' लगाकर उस मन्त्र का जप ६ बार करने से मन्त्र की अशुद्धता, अपवित्रता समाप्त हो जाती है और मन्त्र पवित्र हो जाता है ।

'कुल्लुका' क्रिया शिर पर की जाती है, प्रत्येक मन्त्र के देवता की कुल्लुका होती है, जैसे, महाकाली की कुल्लुका 'माया' है ।

'मणिपूर' क्रिया 'अ' वर्ण से लेकर 'ह' वर्णतक की वर्णमाला का जप है ।

'सेतु' क्रिया बीजाक्षर के जप से निष्पन्न हो' जाती है। जिस मन्त्र को सिद्ध करना हो, उस मन्त्र के देवता का बीजमन्त्र 'सेतु' क्रिया में जपा जाता है। जैसे, 'ॐ', 'ह्रीं' ये एकाक्षर बीजमन्त्र है। सामान्यतया इनके जपने से 'सेतु' क्रिया निष्पन्न होती है। किन्तु काली का 'सेतु' उसका ही वीज 'क्रीं' है। तारा का 'कूर्च है। काली और तारा के मन्त्रों को सिद्ध करने में 'ॐ' या 'ह्रीं' सेतु का नहीं बल्कि इन्हीं के 'सेतु' प्रयोग में लाने चाहिए।

'निद्रा मन्त्र' की क्रिया मूलमन्त्र के आदि और अन्त में 'ई' लगाकर उसको सात बार जपने से निष्पन्न होती है।

मन्त्र चैतन्य क्रिया 'मणिपूर' चक्र में 'मातृका बीज' का संपुट लगाकर मूलमन्त्र को सात वार जपने से निष्पन्न होती है।

'मन्त्रार्थ भावना' क्रिया मन्त्र के अन्तर्गत वर्ण और मातृकाओं के ध्यान करने से निष्पन्न होती है।

वस्तुतः मन्त्र ही वर्णरूप देवता है, मन्त्रों द्वारा 'पराचित्' शक्ति प्रकट होती है। मन्त्रों की साधना से मन्त्र चैतन्य होते हैं। साधक की चेतना का मन्त्र की चित्शक्ति से ऐक्य सम्बन्ध स्थापित होता है और साधक के सामने मन्त्र का अधिष्ठातृ देवता प्रकट हो जाता है। यह तभी संभव होता है, जब साधक की साधना-शक्ति ही काम करती है, किन्तु मन्त्र-साधना में साधक की शक्ति मन्त्रशक्ति से मिलकर क्रियाशील होती है।

बीजाक्षर साधना

तीन अक्षरों (अ, उ, म,) के प्रणव (ॐ) से ही विश्व की सृष्टि होती है। परम रहस्य का वीज 'ॐ' ही है। तन्त्र शास्त्र और तांत्रिक प्रयोगों में बीजाक्षरों(संकेताक्षरों)का महनीय स्थान है। तन्त्र-साधना में बीजाक्षरों के प्रयोग कई प्रयोजनों से किए जाते हैं। किसी विस्तृत विषय

को संक्षेप में बताने के लिए बीजाक्षर सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। कहीं पर किसी गुह्यमन्त्र को गुह्यातिगुह्य बनाने के लिए बीजाक्षरों का प्रयोग किया गया है। भारतीय मनीषियों की इस बीज-प्रणाली को अंगीकार कर आज का विज्ञान बहुत समृद्ध हुआ है।

बीजाक्षरों के शुद्ध प्रयोगों से सिद्धियाँ सहजता से प्राप्त की जा सकती है, फिर मन्त्रों के जप करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। प्राचीन साधकों के अनुभव द्वारा यह प्रमाणित है कि प्रत्येक बीजाक्षर का लिखना भी एक कला है, एक साधना है। आचार्यों ने सुलेख लिखने के लिए जिन दस बातों पर विशेष ध्यान रखने की हिदायत दी है, उनमें बीजाक्षर लिखने के लिए बताया गया है कि यन्त्र की प्रत्येक रेखा की गोलाई, मोटाई, लम्बाई का विशेष अर्थ होता है। विधिपूर्वक लिखे गये यन्त्र और बीजाक्षर तथा बीजांक को देखते ही उनकी पवित्रता और गुह्यता का प्रभाव मन, मस्तिष्क पर पड़ता है। आचार्यों ने बीजाक्षरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

१. **दर्शन शास्त्र में**—दार्शनिक प्रयोग, त्र्यक्षरमन्त्र, दशाक्षरमंत्र आदि।

२. **देवताओं के नाम का संक्षेप**—वि = विनायक, भै = भैषज्यगुरु।

३. **धारिणी**—अं = रश्मिविमल विशुद्ध प्रभाधारिणी।

४. **मंडल**—अग्नि = सूर्य, सोम, परतत्त्व

५. **मन्त्र**—ग्रीं मन्त्र

६. मन्त्रों में **देवमंत्र** जैसे, विष्णु, नृसिंह, षडक्षरमन्त्र, शिवपंचाक्षर मन्त्र, नवाक्षर मन्त्र आदि।

सूर्य मंत्र—ॐ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय सूर्याय स्वाहा।

षट्कर्म—मारण कर्म में 'फट' बीजाक्षर का प्रयोग, वशीकरण में स्वाहा, कीलन में वषट्, विद्वेषण में वौषट्, उच्चाटन में वषट और शान्ति कर्म में नमः का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र विद्या कुकृत्य एवं कृत्या प्रयोगों की शान्ति के लिए केवल बीजाक्षरों के प्रयोग की अनुमति देती है। मन्त्रशास्त्र का कथन है कि यदि कोई व्यक्ति दीर्घकाल से असाध्य रोग से पीड़ित है, जीवन से निराश हो चुका है तो उसे निम्नलिखित बीजाक्षरों का प्रयोग करना चाहिए—

ॐ सं सां सिं सीं सुं सूं सें सैं सों सौं सं सः वं वां विं वीं वुं वूं वें वैं वो वौं वं वः अमृतवर्चसे स्वाहा।

इस मन्त्र की प्रयोग विधि यह है—

मिट्टी के सकोरा में शुद्ध जल भर कर उक्त मन्त्र से १०८ बार जल को अभिमन्त्रित कर प्रातःकाल रोगी को पिलाया जाए तो साल भर के अन्दर असाध्य रोग से मुक्त होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

यदि कोई आदमी किसी दुष्ट आदमी द्वारा सताया जाता है तो उस दुष्ट का दमन करने के लिए निम्नांकित मन्त्र का विधान है—जिस मंगलवार को अमावस्या पड़े उसी रात तिरमुहानी (तीनरास्ता) में बैठकर नीचे लिखे मन्त्र का जप करने से दुष्ट-निग्रह होता है।

मन्त्र—ॐ कक्कोल कक्कोल किलि किलि शोषय शोषय मथ मथ क्रूं क्रूं ह्रीं फट्।

इसी प्रकार गज, व्याघ्र, चौर भय आदि के निवारण के लिए अनेक बीजमन्त्र हैं। इनके अतिरिक्त द्वारोद्घाटन, हिंस्रजन्तु-स्तम्भन, आपन्निकरण, क्रोधशमन, आत्मरक्षा, देवदर्शन, त्रिकालदर्शन, मनोकामना पूर्ति विषयक अनेक बीजमन्त्र हैं।

७ **मुद्रा**—अं, खं अथवा तथागत ज्ञान महामुद्रा के लिए बीज है।

८ **यंत्रों में**—शत्रुनाश के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला व्यष्टि मन्त्र है, इसमें बीजाक्षर लिखे जाते हैं।

९ **साम्न; पञ्चाग्नि**—नमः, स्वाहा, वषट्, हुंफट् बीज हैं ।

१० **सूत्रों के लिए संक्षिप्त बीज**—ॐ = महामेघ सूत्र ।

११ **वर्णमाला के बीज**—वर्णमाला (अ से लेकर ह अक्षर तक) के बीजाक्षरों द्वारा मानव के शरीरांगों अथवा शक्तियों का बोध कराया जाता है। शब्द ब्रह्म की महती शक्ति बीजाक्षरों में निहित रहती है। जो साधक बीजाक्षरों का रहस्य जानकर मन्त्र-साधना करता है, उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

●

५ | शाक्तमंत्र और उनकी साधना-विधि

शाक्त मन्त्रों की साधना में साधक को लाल रेशमी वस्त्र पहनना चाहिए। साधना का समय ब्राह्ममुहूर्त्त या आधी रात उपयुक्त होता है। गृहस्थ साधक को मृग चर्म या व्याघ्र चर्म पर बैठ कर साधना नहीं करनी चाहिए। ये दोनों आसन ज्ञान प्रधान होने से केवल विरक्तों के लिए उपयुक्त होते हैं। गृहस्थ साधक के लिए कुशासन, दर्भासन, कौशेयासन, शरपत्रआसन, तालपत्रआसन और ऊर्णासन विहित है।

आसन

कौशेयासन (रेशमी आसन) पर बैठ कर साधना करने से व्याधियों का नाश होता है। सूत से बने आसन पर बैठने से साधना विफल होती है। ऊन के आसन पर बैठने से दुःख, दारिद्रय का नाश होता है। कुशासन पर बैठने से आयु, आरोग्य की वृद्धि होतो है, मृगचर्म पर बैठने से ज्ञान-सिद्धि मिलती है और व्याघ्रचर्मासन पर बैठने से मोक्ष-गमन होता है।

शान्ति कर्म की साधना में धवल वर्ण का आसन सिद्धि प्रदान करता है। कई रंगों के ऊनी आसन पर बैठने से साधना सफल होती है, महाकाली, त्रिपुर सुन्दरी, ललिता और दुर्गा भगवती की साधना में लालरंग के आसन का व्यवहार करना चाहिए।

आसन दो हाथ लंबा, डेढ़ हाथ चौड़ा और तीन अंगुल से अधिक लंबा-चौड़ा और मोटा नहीं होना चाहिए। लकड़ी के बने हुए आसन पर बैठ कर साधना नहीं करनी चाहिए। इस आसन से विपरीत फल मिलता है।

महामाया की साधना में ऊन का आसन, कामाख्या देवी की साधना में मृगचर्म, त्रिपुर सुन्दरी, शिव, विष्णु की साधना में कुश का आसन उत्तम माना गया है।

साधना के प्रमुख पाँच आसन--साधनाकाल में भूमि पर बिछाए जाने वाले आसनों के अतिरिक्त साधक के बैठने के आसन का अधिक महत्त्व है। विभिन्न उद्देश्यों के लिए की जाने वाली साधनाओं के लिए पाँच प्रकार के बैठने के आसन हैं--

१--पद्मासन, २--स्वस्तिक आसन, ३--रुद्रासन, ४--वज्रासन और ५--वीरासन।

१—बायाँ पैर दाहनी जंघा के जोड़ में रखकर दाहने पैर को बाईं जंघा के जोड़ पर रखने से **पद्मासन** बनता है। जप करने में, ध्यान करने में यह आसन बहुत उपयोगी होता है।

२--जानु तथा दोनों जंघाओं के मध्य दोनों पैर रखकर शरीर को सीधा करके बैठने से **स्वस्तिक आसन** बनता है।

३---अण्डकोश के अधोभाग में सीवनी के दोनों पार्श्वों में पैरों के दोनों गुल्फ स्थापित करते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के पार्श्वभाग को बाँध कर निश्चल बैठने से **रुद्रासन** बनता है।

४—दोनों पैरों के अग्रभाग को पीछे मोड़ कर घुटनों पर दोनों हाथों की हथेलियाँ उलट कर रखने से **बज्रासन** बनता है।

५—दाहिना पैर बाईं जंघा पर और बायाँ पैर दाहिनी जंघा पर रखकर शरीर को सीधा करके बैठने से **वीरासन** बनता है।

काली मन्त्र की साधना—दश महाविद्याओं में महाकाली आद्या विद्या हैं। महाकाली का मन्त्र सभी प्रकार के दुःखों का निवारण कर अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करता है।

मूल मन्त्र—ॐ क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं

दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

साधक को चाहिए कि मंत्र के अन्तर्गत आए हुए बीजाक्षरों के स्वरूप अर्थ समझ कर मन्त्र का जप करे। मन्त्रार्थ समझते हुए जप करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है।

कालीमन्त्र में आए हुए वर्णों का अर्थ इस प्रकार है—

जलरूपी 'क' मोक्षदायक है। अग्निरूपी 'रेफ' सर्वतेजोमय है।

क्रीं क्रीं क्रीं ये तीनों बीजाक्षर सृष्टि, स्थिति, प्रलय के प्रतीक हैं। इनका विन्दु ⊙ मुक्ति प्रद है और हुं हुं ये दोनों बीजाक्षर ज्ञानप्रद हैं। ह्रीं ह्रीं ये दोनों बीजाक्षर सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने में समर्थ हैं। दक्षिणकालिके सम्बोधन शब्द है। यह सम्बोधन भगवती महाकाली का सान्निध्य प्राप्त कराने का बोधक है और स्वाहा शब्द उच्चारण करने मात्र से सब पापों का क्षय करता है।

साधना प्रारंभ करने से पूर्व क्रीं बीज का तीन बार उच्चारण करते हुए तीन बार आचमन करना चाहिए। तदनन्तर ॐ काल्यै नमः ॐ कपाल्यै नमः दो बार कह कर दोनों ओठों का मार्जन करे, फिर कुल्यायै नमः कह कर हस्त प्रक्षालन करे। तदनन्तर ॐ कुरु कुल्यायैं नमः से मुख, ॐ विरोधन्यै नमः से दाहिनी नासिका, ॐ विश्वचित्तायै नमः से वाम नासिका, ॐ

उग्रायै नमः से दाहिनी आँख, ॐ उग्र प्रभायै नमः से बाईं आँख, ॐ दीप्तायै नमः से दाहना कान, ॐ नीलायै नमः से बायाँ कान, ॐ घनायै नमः से नाभि, ॐ बलाकायै नमः से हृदय, ॐ मात्रायै नमः से मस्तक, ॐ मुद्रायै नमः मे दाहिना कन्धा और मितायै नमः मे बायाँ कन्धा स्पर्श करे।

इसके वाद तत्त्वशुद्धि और भूत शुद्धि करके प्राणायाम करे। ह्रीं इस एकाक्षर बीज को १६ वार जपते हुए पूरक प्राणायाम ६४ बार जप कर कुम्भक प्राणायाम और ३२ वार जप कर के रेचक प्राणायाम करना चाहिए। इस विधि से तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। तत्पश्चात् विनियोग करे—

विनियोग— अस्य कालीमंत्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिण कालिका देवता, ह्रीं बीजम्, क्रीं कीलकम्, हुँ शक्तिः, सर्व पुरुषार्थं सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि भैरव ऋषये नमः। उष्णिक् छन्द से नमः हृदि। दक्षिण कालिकायै देवतायै नमः गुह्ये। ह्रीं बीजाय नमः पादयोः। हुं शक्तये नमः मुखे। क्रीं कीलकाय नमः सर्वांगे।

कराङ्गन्यास—ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रू मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां वषट्। ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

षडङ्गन्यास—ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहन ॐ क्रूं शिखायै वषट्। ॐ क्रैं कवचाय हुं। ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्रां अस्त्राय फट्।

वर्णन्यास—ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः हृदि। ॐ एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः दक्षिण वाहौ। ॐ ङं० चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः वाम वाहौ। ॐ णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः दक्षिण यादे। ॐ मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं नमः वामपादे।

मातृकान्यास

१. ॐ अं ॐ ललाटे—सब मातृका वर्णों का मातृका न्यास करे।
२. अं ॐ अं आं ॐ आं–ललाट आदि मातृकान्यास स्थानों में न्यास करे।
३, श्रीं अं श्रीं—ललाट आदि का मातृकान्यास आदि स्थानों में न्यास करे।
४. अं श्रीं अं—ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
५. क्लीं अं क्लीं—ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
६. अं क्लीं अं—ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
७. ह्लीं अं ह्लीं—ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
८. अं ह्लीं अं—ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
९. क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं ॡं क्रीं क्रीं अं क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं ॡं क्रीं क्रीं नमः का ललाट आदि मातृका न्यासों में न्यास करे।

१०. अं क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं ॡं अं नमः का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

११. क्रीं अं क्रीं का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
१२, अं क्रीं अं का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
१३. क्री हं क्रीं का विलोम क्रम से मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
१४ हं क्री हं का विलोम क्रम से मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।
१५. उपर्युक्त २२ अक्षरों के क्रम में मूल मंत्र से १०८ बार व्यापक न्यास करे। तदनन्तर तत्त्व न्यास, बीज न्यास करे।

तत्त्व न्यास—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्लीं ह्लीं ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा। इस मंत्र से पैर से नाभितक न्यास करे।

दक्षिण कालिके ॐ विद्यातत्वाय स्वाहा—इस मंत्र से हृदय से लेकर मस्तक तक न्यास करे।

बीजन्यास—ब्रह्मरन्ध्रे क्रीं नमः। भ्रूमध्ये क्रीं नमः ललाटे क्रीं नमः। नाभौ हुँ नमः। मुखे ह्लीं नमः। सर्वाङ्गे ह्लीं नमः।

तदनन्तर मूल मंत्र से सात वार व्यापक न्यास करके श्रीं महाकाली का ध्यान करे। ध्यान के बाद मूल मंत्र का जप रुद्राक्ष की माला से करे। नित्य नियम, संयम और विधिपूर्वक १०८ वार मूलमंत्र का जप करते हुए जव २१००० जप संख्या पूरी हो जाए तो जप संख्या का दशांश हवन किया जाए।

इस विधि से काली मंत्र सिद्ध हो जाता है।

नवार्णमंत्र की साधना—दुर्गासप्तशती का मूलमन्त्र नवार्ण मन्त्र है। इसमें नौ अक्षर होने से यह नवार्ण कहा जाता है। नवार्णमन्त्र के सम्वन्ध में गुरु-परम्परा से यह मत प्रचलित है कि 'निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के ब्रह्मतत्वों का प्रकाश शक्ति मन्त्र नवार्ण मन्त्र से ही होता है। निर्गुण ब्रह्म का प्रकाश गायत्री मन्त्र में है और सगुण ब्रह्म का प्रकाश (रूप) दुर्गा के इस नवार्ण मन्त्र में है। दोनों ही शक्ति मन्त्र हैं। इन दोनों की साधना से जितने भी मन्त्र (३३ करोड़) हैं, वे सब सिद्ध होते हैं।

नवार्ण मन्त्र—ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

साधना विधि—एक चौरस ताम्रपत्र वनवाकर उस पर अनार की कलम और लाल चन्दन से षट्कोण ★ बनाया जाए। मध्य में ऐं ह्रीं क्लीं लिखा जाए। शेष वर्णों को छह कोणों में लिखा जाए। यंत्र के मध्य में फूल, बत्ती का दीपक रख कर **ॐ देवी दीपाधाराय यंत्राय नमः** पढ़ते हुए यंत्र का पूजन पंचोपचार से करे। फिर नवार्ण मन्त्र से दीप-ज्योति में भगवती दुर्गा का आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा अक्षत छिड़कते हुए की जाए।

तदनन्तर

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्मताम्॥

पढ़ कर भगवती का षोड़शोपचार पूजन किया जाए। पूजन के बाद

नवार्ण मन्त्र से अंगन्यास, करन्यास आदि करके भगवती दुर्गा का ध्यान किया जाए।

ध्यान

विद्युदाम समप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीवणाम्।
कन्याभिः करवालखेट विलसद्धस्ताभिरासेविताम्॥
हस्तैश्चक्र गदालिखेट विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रांभजे॥

ध्यान के बाद नवार्ण मन्त्र का जप करना चाहिए। जप एक नियत संख्या में प्रतिदिन इतना किया जाए कि २१ दिन में एक लाख जप पूरा हो जाए। एक लाख जप पूरा होने के बाद दशांश हवन करना चाहिए।

नवार्ण मन्त्र की यह साधना कभी विफल नहीं होती है। चाहें जिस प्रयोजन के लिए की जाए वह अवश्य पूरा होता है। साधना करते समय अनेक चमत्कारिक अनुभूतियाँ हुआ करती हैं।

दारिद्र्य-दुःख-भयहारी दुर्गामन्त्र - एकान्त, शुद्ध स्थान में कुशासन पर पद्मासन से बैठ कर आसन-शुद्धि, तत्वशुद्धि और भूतशुद्धि करके हाथ में कुश-जल लेकर संकल्प करे। तत्पश्चात् विनियोग करे।

विनियोग—अस्य श्री दुर्गेस्मृतेति मन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री महालक्ष्मी देवता, शाकम्भरी शक्तिः, वायुः कीलकं, मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्यदुःखभयपरिहारार्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—श्री विष्णु ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप् छन्द से नमः मुखे। महालक्ष्मी देवतायै नमः हृदि। शाकम्भरी शक्तयै नमः नाभौ। वायुः कीलकाय नमः पादयोः। मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्य परिहारार्थं विनियोगाय नमः कराञ्जलौ।

करन्यास—दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः यदन्ति यच्च दूर-के भयं विन्दति मामिह अंगुष्ठाभ्यां नमः।

स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दन्ति । मामिह तर्जनीभ्यां नमः ।

दारिद्र्य दुःखभयहारिणि कात्वदन्या यदन्तियच्चदूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि मध्यमाभ्याँ नमः ।

सर्वोपकार करणाय सहार्द्र चित्ता यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतंजहि अनामिकाभ्यां नमः ।

दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि दारिद्र्य दुःखभयहारिणि का त्वदन्या कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ ह्रीं दुं दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थैः स्मृतां मतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि । दारिद्र्य दुःख भयहारिणि का त्वदन्या स्वाहा करतलं करपृष्ठाभ्यां नमः ।

तदनन्तर ध्यान करे—

विद्युद्धामसम प्रभां मृगपतिस्कन्ध स्थितां भीषणाम् ।
कन्याभिः करवालखेट विलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।।
हस्तैश्चक्र गदालिखेटवि विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

तदनन्तर १०८ वार निम्नांकित मन्त्र का जप करे—

ह्रीं दुं दुर्गेस्मृता हरसिभीतिमशेष जन्तोः,
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभांददासि
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह
पवमानवीतंजहि दारिद्र्य दुःखभय हारिणिकात्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता स्वाहा ।।

इस प्रकार सविधि साधना करते हुए १० हजार मन्त्र-जप-संख्या-पूरी होने पर यह मन्त्र सिद्ध होता है।

यह प्रयोग अनुभूत और अमोघ है। प्रतिदिन इसका थोड़ा भी जप करने से रोग-दोष, भय, संकट, दुःख-दारिद्र्य का नाश होता है।

तारिणी मन्त्र साधना—तन्त्रशास्त्र में तारिणी मन्त्र को महाविद्या का दोष रहित मन्त्र कहा गया है, किन्तु तिब्बत के बौद्ध लामाओं के यहाँ तारिणी मन्त्र का बहुलांश है और वे तारिणी मन्त्र की साधना कर अद्‌भुत शक्तियाँ प्राप्त करते थे। इस तन्त्र का कुछ अंश जैन-मतावलंबियों के पास भी है। अनेक जैनाचार्य तारिणी मन्त्र की साधना कर महान् सिद्ध प्रसिद्ध हुए हैं। तिब्बती लामाओं का मत है कि तारिणी मन्त्र का 'त्रीं' भगवती तारणी मां का 'स्वबीज' है। इसे तारिणी मन्त्र की साधना में किसी भी रीति से मूल मन्त्र से पृथक् नहीं करना चाहिए।

तारिणी मन्त्र स्वतः सिद्ध है। इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। केवल जपमात्र से अभीष्ट सिद्ध होता है। तारिणीदेवी का मूल मन्त्र यह है—

ॐ ह्रीं त्रीं हुँ फट् स्त्रीं ह्रीं ॐ

जयदुर्गामन्त्र-साधना

जयदुर्गा का दशाक्षर मन्त्र बहुत ही सिद्धिप्रद है। अंगन्यास, कर-न्यास और ध्यानपूर्वक इस मन्त्र का जप करना चाहिए। जपसंख्या एक लाख है।

मूलमन्त्र—ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि ठः ठः स्वाहा।

करन्यास—ॐ दुर्गे अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ भूतरक्षिणी अनामिकाभ्यां हुं। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट्।

करन्यास करने के बाद हृदयादिन्यास करके ध्यान किया जाए।

ध्यान

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां
मौलि बद्धेन्दु रेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करै—
रुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं
तेजसा पूरयन्तीम् ।
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां
सेवितां सिद्धिकामैः ।।

शूलिनीदुर्गा-मन्त्र—इस मन्त्र की साधना में अंगन्यास, कर-न्यास, हृदयादिन्यास करके ध्यान किया जाए, इसके बाद मूल मन्त्र का जप प्रतिदिन ११०० करे । कुल जप संख्या सवालाख है ।

मन्त्र—ॐ ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रह हुं फट् ।

करन्यास—ॐ शूलिनी दुर्गे हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ शूलिनी वरदे हुं फट् तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट् ।

ॐ शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं ।

ॐ शूलिनि देवसिद्धपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरी हुं फट् कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करना चाहिए ।

ध्यान

अध्यारूढ़ां मृगेन्द्रं सजल जलधरश्यामलां हस्तपद्मां ।
शूलं वाणं कृपाणं त्वसि जलजगदा चापपाशान् वहन्तीं ।।
चन्द्रोतंशां त्रिनेत्रां चितसृणिरसिमाखेटकं विभ्रतीभिः ।
कन्याभिः सेव्यमाना प्रतिभट भयदां शूलिनीं भावयामः ।।

ध्यान के बाद पीठ-पूजन कर जप करना चाहिए। जप की संख्या १५ लाख है। हवन दशांश करना चाहिए।

विशेष—पीठ-स्थापना के स्थान पर चक्र-स्थापना अधिक सुविधा-जनक होता है। सिद्धि भी शीघ्र मिलती है। ताम्रपत्र पर श्रीयंत्र अंकित कराकर उसी का पूजन करना चाहिए।

सिद्ध दुर्गा-मन्त्र—रात के १२ बजे ऊन के आसन पर बैठकर सिंह-वाहिनी दुर्गा की प्रस्तर प्रतिमा या मिट्टी की मूर्ति अथवा चित्रपट सामने रख कर घी का दीप जला कर पृष्ठ ८२ में लिखित सिंहवाहिनी दुर्गा का ध्यान करे।

ध्यान के अनन्तर मूलमन्त्र का जप ८० माला नित्य करे। ४१ दिन में यह दुर्गा-मन्त्र प्रत्यक्ष चमत्कार उत्पन्न कर सिद्ध होता है। ४१ दिन पूरे हो जाने के बाद ६ दिन तक प्रतिदिन ८ माला जपते हुए मूलमन्त्र से १०८ बार हवन करने से मन्त्र पूर्ण सिद्ध हो जाता है। किसी प्रकार के संकट, भूतग्रह, प्रेत-पिशाच बाधा, दुर्भाग्यग्रस्त, रोग-ग्रस्त व्यक्ति पर दूर्वादल से जल छिड़कते हुए मन्त्र पढ़ने से सारी बाधाएँ तत्काल दूर हो जाती हैं।

मूलमन्त्र—ह्रीं दुं दुर्गायैनमः

महिषमर्दिनी दुर्गामन्त्र—यह मन्त्र शत्रुबाधा-निवारण में अद्वितीय है। इससे शत्रु पर मारण प्रयोग भी किया जाता है। कर-बल-छल-सम्पन्न शक्तिशाली शत्रु को परास्त करने के लिए इस मन्त्र की साधना की जाती है। इस मन्त्र का पुरश्चरण भी किया जाता है। पुरश्चरण करने में ऋष्यादिन्यास पूर्ववत् किए जाएँ। केवल कराङ्गन्यास में अन्तर है। कराङ्गन्यास इस प्रकार किया जाए—

कराङ्गन्यास—महिष हिंसके हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः। महिषशत्रोः हुं फट् तर्जनीभ्यां नमः। महिषं ह्लेषय ह्लेपय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्। महिषं हन हन देवि हुं फट् अनामिकाभ्यां हुँ फट् स्वाहा। महिषमर्दिनि

हुं फट् कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । कराङ्गन्यास के ही मन्त्रों से अंगन्यास किया जाए। जैसे—महिष हिंसके हुं फट् हृदयाय नमः इत्यादि।

ध्यान

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलि कुण्डल मण्डिताम् ।
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम् ॥
शंखचक्र कृपाणखेटकवाणकार्मुक शूलकाम् ।
तर्जनीमपि विभ्रतीं निजवाहुभिः शशिशेखराम् ॥

ध्यान के बाद पीठ-पूजन करे। तदनन्तर मूल मन्त्र का जप करना चाहिए। जप संख्या ८ लाख है और ८ लाख आहुति भी देनी चाहिए।

मूल मन्त्र—ॐ ह्रीं क्ली ऐं महिषमर्दिनि स्वाहा।

भुवनेश्वरी मन्त्र-साधना—भगवती भुवनेश्वरी का परमसिद्ध मन्त्र यह है—

ॐ हर त्रिपुर हर भवानी बाला
राजा प्रजा मोहिनी सर्वशत्रु-
विध्वंसिनी मम चिन्तितं फलं
देहि देहि भुवनेश्वरी स्वाहा ॥

इस मन्त्र का प्रयोग सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। यदि धन, समृद्धि की कामना रखकर साधना की जाए तो पद्माक्ष या रेशम की माला से जप किया जाए। शत्रु-निवारण के लिए हल्दी की माला से, संकट-विपत्ति निवारण के लिए लाल चन्दन की माला से, विद्याप्राप्ति के लिए स्फटिक की माला से जप किया जाए। सभी प्रकार के प्रयोजन के लिए रुद्राक्ष की माला से जप करने से कामनापूर्ति होती है।

प्रयोगविधि—ब्राह्म मुहूर्त्त में अथवा रात दस बजे के बाद से इसकी आराधना करनी चाहिए। पूर्व की ओर मुँह करके कुशासन पर पद्मासन लगाकर बैठा जाए। घी का दीप जला लिया जाए। दीपक-ज्योति में भगवती का आवाहन, पूजन कर ध्यान किया जाए।

ध्यान

वालरविद्युतिमिन्दु किरीटां
तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्तां ।
स्मरेमुखीं वरदाङ्कुशपाशां
भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ।।

ध्यान के अनन्तर मन्त्र का जप करना चाहिए। नित्य १०८ बार जप करते हुए हवन करता जाए। २१ दिन में जप-हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद प्रतिदिन १०८ बार जप करते रहना चाहिए। कोई विशेष प्रयोजन आ जाने पर उसकी सफलता के लिए १०८ बार हवन कर देने मात्र से कार्य सिद्ध हो जाता है।

वज्रेश्वरी मन्त्र—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरी पुर निवासिनि मम-कार्य साधय साधय स्वाहा।

इस मन्त्र को २१ दिन में सिद्ध किया जाता है। प्रतिदिन १०८ बार जप करना चाहिए। अन्तिम दिन दशांश हवन किया जाए। २१ दिन तक संयम-नियम पूर्वक रहना चाहिए। जप करने से पूर्व नित्य ध्यान किया जाए—

ध्यान

अरालं ते पाली युगलमगराजन्य तनये ।
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्ड कुतुकं ।।
तिरश्चीनो यत्र श्रवण पथमुल्लंध्य विलस-
न्नपांगव्यासंगो दिशति शरसन्धानधिषणाम् ।।

बगलामुखी मन्त्र—बगलामुखी भगवती का मन्त्र पूर्ण सिद्ध है। केवल ४१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जप करना चाहिए।

ब्राह्म-मुहूर्त में कुशासन पर सिद्धासन से बैठ कर जप किया जाए। रुद्राक्ष अथवा हल्दी की माला से जप करना चाहिए। जपकाल में पीलावस्त्र धारण किया जाए और दीप-ज्योति जलाकर ज्योति में भगवती का आवाहन, पूजन कर जप प्रारंभ करना चाहिए।

इस मन्त्र की सिद्धि से वाणी सिद्ध हो जाती है। भविष्य की बातों का ज्ञान होता है। शत्रु मित्र बनते हैं। सभी प्रकार के संकटों से मुक्ति मिलती है।

मंत्र—ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिराभाव सर्वसत्ववशंकरि स्वाहा।

दैन्य-भेदिनी मंत्र-साधना—भगवती त्रिपुर सुन्दरी दीनता-दरिद्रता को दूर करती हैं, इसलिए उन्हें दैन्यभेदिनी भी कहा जाता है। इस मन्त्र की साधना नवरात्र में करनी चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में कुशासन पर बैठ कर सिद्धासन लगाकर जप किया जाए। दीप ज्योति में भगवती का आवाहन कर पूजन किया जाए। पश्चात् ध्यान किया जाए।

ध्यान

ददाने दीनेभ्य: श्रियमनिशमाशानुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्यं प्रकरमकरन्दं विकरति।
तवास्मिन् मन्दारस्तवकसुभगे यातु चरणे,
निमज्जन्मज्जीव: करणचरणै:षट्चरणताम्॥

मंत्र—ॐ श्रीं ऐं यं रं लं वं दुर्गतारिण्यै दैन्यभेदिन्यै स्वाहा।

नवरात्र में ९ दिनों में सवा लक्ष जप पूरा करके दशमांश हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

स्वप्नेश्वरी दुर्गामंत्र—यह स्वत: सिद्धमन्त्र है। यदि किसी कार्य की सफलता, असफलता जाननी हो तो रात में सोने से पहले शुद्ध हृदय से भगवती दुर्गा का ध्यान करके कार्य या प्रयोजन की सफलता जानने के लिए मानसिक संकल्प कर नीचे लिखे मन्त्र को जपते हुए सो जाना चाहिए। निश्चय ही स्वप्न में प्रामाणिक उत्तर मिलता है।

मंत्र—दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थ साधिके ।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ।।

बालग्रह-निवारण मंत्र—इस मन्त्र को सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण में ११०० बार जप करके १०८ बार हवन करके सिद्ध कर लिया जाए । सिद्ध हो जाने पर पाँच वर्ष की आयु तक के बच्चों को किसी प्रकार की भी बाधा होने पर मन्त्र पढ़ते हुए मोरपंख से झाड़ दिया जाए । हर प्रकार की बाधा दूर होती है ।

मन्त्र—क्षीर गोपय गोरक्षी रक्षमाक्ष क्षमः क्षरः ।

सर्वापन्निवारण-मन्त्र

असाध्य बीमारी में, प्रतिष्ठा भंग होने की स्थिति में, न्यायालय में मुकदमा होने पर तथा जो भी संकटपूर्ण स्थिति हो, उसमें निम्नांकित मन्त्र से श्रीदुर्गा-सप्तशती का संपुटित पाठ ६ दिन पर्यन्त करने से ९ दिन के अन्दर ही कार्य और मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

पूर्व मन्त्रों की भाँति संकल्प, विनियोग, सभी प्रकार के न्यास करके पाठ किया जाए । यदि देवी की प्रतिमा न हो तो देवी का पीठ स्थापित कर आवाहन किया जाए और षोड़शोपचार पूजन किया जाए । ज्योति अवश्य जलाई जाए ।

मन्त्र—सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।
स्मरन्ममैतच्चरितं, नरो मुच्येत् संकटात् ।।

वशीकरण-मन्त्र

यहाँ पर वशीकरण का तात्पर्य सीमित है । यह वशीकरण प्रयोग उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों पर ही किया जाना चाहिए, जो पहले मित्र रहे हैं, बाद में अमित्र बनकर संकट उपस्थित करते हैं ।

प्रयोग-विधि

मिट्टी की वेदी बनाकर उस पर मिट्टी का एक सकोरा रखना

चाहिए। उस सकोरे की भीतरी पेंदी पर ऊपर से नीचे और बाएँ से दाएँ चार सीधी रेखाएँ अष्टगंध (श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, केशर, कस्तूरी, गोरोचन, कपूर, अम्बर, अगर) और अनार की लेखनी से लिखी जाएँ। यदि कोई अष्टगंध सामग्री न खरीद सके तो सिन्दूर और गोघृत का उपयोग किया जाए। रेखाओं से ६ कोष्ठ बनेंगे। उन कोष्ठों के अन्दर अनुलोम, विलोम क्रम से अथवा सर्पाकारगति से नवार्ण मन्त्र के प्रत्येक बीजाक्षर को एक-एक कोष्ठक में पृथक्-पृथक् लिखे। यंत्र के नीचे उस व्यक्ति का नाम लिखे, जिसे वश में करना हो, फिर उस सकोरे को दूसरे सकोरे में ढक कर उसके भी तल पर पहले सकोरे की भाँति यंत्र लिखा जाए। तत्पश्चात् जिसे वश में करना हो, उसके नाम-रूप का ध्यान करें और उस का आवाहन,प्राणप्रतिष्ठा कुश के ऊपर करे। इसके बाद दोनों सकोरों को लाल रेशमी वस्त्र से भलीभाँति ढक दिया जाए। प्रतिदिन ज्योति जला कर ज्योति का और सकोरे में लिखित यंत्र का (कपड़े में ढका रहने दें) पूजन, आवाहन करके निम्नांकित मन्त्र का जप १००८ बार किया जाए।

मंत्र—ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा।
वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

जप पूरा होने पर इसी मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर मन्त्र को पढ़ते हुए विपरीत क्रम से (बाएं से दाएँ) अपने अभिमुख सात या नौ बार घुमाया जाए। घुमाते हुए यह भावना रखनी चाहिये कि वशीभूत किये जाने वाले व्यक्ति को मैं अपने में अन्तर्निहित जगदम्बा की दुर्ल्लंघ्य आत्मशक्ति से अपने अनुकूल करता हूँ। इसके बाद १०८ बार इसी मन्त्र से हवन कर भगवती की प्रार्थना करनी चाहिए।

सायंकाल आरती करके १००८ बार नवार्ण मन्त्र का जप किया जाए। यह अनुष्ठान इसी क्रम से ६ दिन तक करने से अभीष्ट सिद्ध होता है।

कवच-साधना

श्रीदुर्गा सप्तशती का कवच स्वयं सिद्ध है। घी की ज्योति जला कर केवल कवच का पाठ करने मात्र से असाध्य कार्य सिद्ध होते हैं। पहले शापोद्धार किया जाए, फिर संकल्प और विनियोग। इसके बाद कवच का पाठ किया जाए। नित्य कवच के प्रत्येक मन्त्र से हवन कर दिया जाए। केवल नौ दिन के पाठ से दुस्तर से दुस्तर कार्य सिद्ध होते हैं।

सरस्वती-मन्त्र की साधना—गूँगापन, तुतलाना, बुद्धिहीनता, अविकसित मस्तिष्क और जड़ता को दूर कर मेधाशक्ति, स्मृतिशक्ति, बुद्धिवर्द्धक यह सरस्वती मन्त्र अनुभव सिद्ध है।

मंत्र—ह्लीं ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नमः

चन्द्रग्रहण प्रारम्भ होने के साथ ही कुश की जड़ और मधु से जीभ पर 'ऐं' बीज मन्त्र लिखकर ह्लीं ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नमः का जप चन्द्र-ग्रहण पर्यन्त करते रहने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

इसके बाद नित्य ब्राह्ममुहूर्त्त में स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण कर श्वेत रंग के ऊन के आसन पर बैठ कर भगवती सरस्वती का ध्यान करे।

ध्यान

धवल नलिनराजच्चन्द्र संस्थां प्रसन्नां।
धवलवसनभूषामाल्यदेहां त्रिनेत्राम्॥
कमलयुगवराभीत्युल्लसद् बाहुपद्मां।
कुमुदरमणचूड़ां भारतीं भावयामि॥

ध्यान के बाद मन्त्र का जप १०८ बार करे।

गूँगे और तुतला कर बोलने वाले व्यक्ति प्रातःकाल ३ बजे उठ कर हाथ, मुँह धोकर पवित्र जगह में सिद्धासन लगा कर बैठें और जिह्वा का अग्रभाग उलट कर तालु से सटा कर 'ऐं' इस बीज का उच्चारण

करें। तीन महीना में हकलाना और तीन वर्ष के अन्दर गूंगापन दूर हो जाता है।

वाणीसिद्धिप्रद-मन्त्र—वाणी को सिद्ध करने के लिए, वाणी पर अधिकार प्राप्त करने के लिए, वक्तृत्वकला का कौशल प्राप्त करने के लिए भगवती सरस्वती के निम्नांकित बीजमन्त्र की साधना फलप्रद है।

बीजमन्त्र—क्रीं क्रीं क्रीं

नित्य नियमानुसार एक माला जप करते रहने से वाणी सिद्ध हो जाती है। संसद् में, सभाओं में, भाषण देने से पहले इस बीज मन्त्र का मानसिक जप करके भाषण दिया जाए तो वह हर दृष्टि से प्रशंसनीय और संग्रहणीय बनता है।

ऐश्वर्यप्रद काली का बीज मन्त्र—सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले दो बीज मन्त्र हैं। नित्य १०८ बार ५१ दिन तक हवन करने से सिद्ध हो जाते हैं। इसके बाद नित्य नियमानुसार इनका जप करते रहना चाहिए।

१. मन्त्र—हूं हूं

२. ॐ दक्षिण कालिके क्रां क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

बालग्रह-निवारक सिद्धमन्त्र

किसी बालक को अकस्मात् मूर्च्छा आ जाए, बेहोश हो जाए अथवा अज्ञात बीमारी हो जाए। उसे नीरोग करने के लिए नीचे लिखा मन्त्र पढ़ कर बालक के सर्वांग शरीर पर ऊपर से नीचे तक हाथ फेरने अथवा कुश से जल छिड़कने से या हवन कर देने से सभी प्रकार के ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोग दूर हो जाते हैं।

मन्त्र—ऐं ह्रीं क्लीं बालग्रहादि भूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्। क्लीं ह्रीं ऐं॥

शीतला-प्रकोप शामक मन्त्र—बच्चों को शीतला (चेचक) का प्रकोप होने पर नीचे लिखे मन्त्र से बालक की चारपाई के पास १०८ बार तीन दिन तक हवन करने से चेचक का प्रभाव दूर हो जाता है।

मंत्र—शीतले त्वं जगन्माता, शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री, शीतलायै नमोनमः ॥
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे स्वाहा।

बन्दीमोचन मन्त्र—कोई व्यक्ति कारागार में हो उसे मुक्त कराने के लिए इस मंत्र का पुरश्चरण अथवा जप करना चाहिए। यह मन्त्र अमोघ है। इसका प्रयोग विफल नहीं होता है।

जिसे मुक्त कराना हो उसके नाम संकल्प किया जाए, फिर विनियोग करके भगवती का ध्यान किया जाए। तत्पश्चात् १०८ बार नित्य जप किया जाए। दस हजार जप संख्या पूरी होने पर दशांश हवन किया जाए।

प्रतिदिन मन्त्र का जप करने के बाद बन्दीमोचन-स्तोत्र का पाठ अवश्य किया जाए।

मन्त्र—ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ बन्दीदेव्यै नमः
संकल्प के बाद यह विनियोग किया जाए—

विनियोग—ॐ अस्य श्री बन्दीमोचनविद्यायाः विराट् छन्दः, क एव ऋषिः, ह्रीं बीजं, ह्रूं कीलकम्, बन्धमोचने विनियोगः।

ध्यान

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभार तिमिर—
त्विषां वृन्दैर्वन्दी कृतमिव नवीनार्क किरणं-
तनोतु क्षेमं नस्तव बदनसौन्दर्य लहरी।
परीवाहस्रोतः सरणिरिव सीमान्त सरणिः ॥

बन्दी-मोचन स्तोत्र

वन्दीं देवीं नमस्कृत्य वरदाऽभय शोभितां ।
त्वां बन्दीं शरणं गत्वा शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
बन्दी कमलपत्राक्षी लौहश्रृंखल भञ्जना ।
प्रसादं कुरु मे देवि शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
त्वं बन्दी त्वं महामाया त्वं दुर्गा त्वं सरस्वती ।
त्वं देवि रजनी चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
संसारतारिणी बन्दी सर्वकाम प्रदायिनी ।
सर्वलोकेश्वरी बन्दी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
त्वमैन्द्री चेश्वरी चैव ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ।
त्वं च कल्पक्षये तावत् शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।
दिविधात्री धरित्री च धर्मशास्त्रादिभाविनी ।
दुःखहा भंगिनी देवि शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
नमस्कृत्य महालक्ष्मीं रत्नकुण्डल भूषितां ।
शिवस्यार्द्धाङ्गवासिनी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।
नमस्कृत्य महादुर्गे महादुस्तरतारिणी ।
महादुःखहरणी च शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ।।

श्री गंगाष्टाक्षर मंत्र

श्री गंगा जी का अष्टाक्षर मन्त्र बहुत शक्तिशाली है । रोग-दोष, दारिद्र्य, दुःख निवारण के लिए तथा सन्तान-सुख, दाम्पत्य-सुख, गार्हस्थ्य-सुख प्राप्त करने और जन्मान्तर के पापों को दूर करने में यह मन्त्र और गंगा कवच अमोघ सिद्ध हुआ है ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं गङ्गायै स्वाहा

महाविद्यारूपी इस अष्टाक्षर मन्त्र का जप गंगातट पर बैठकर नित्य १०८ बार जपने से ४१ दिन में कामना पूरी हो जाती है । जहाँ

गंगा जी न हों, वहाँ किसी भी सरिता, सरोवर के तट पर गंगा जी की भावना करके जप करना चाहिए। १०८ बार जप करने के बाद नीचे लिखा गंगा-कवच का पाठ करना चाहिए।

श्री गंगा-कवच

विनियोग—ॐ गङ्गायै नमः। अस्य श्री गंगा कवचस्य विष्णुर्ऋषिर्विराट् छन्दः चतुर्दश पुरुषोद्धारणार्थं पाठे विनियोगः।

ॐ द्रवरूपा महाभागा स्नाने च तर्पणेऽपि च।
अभिषेके पूजने च पातु माम् शुक्लरूपिणी ।।१।।
विष्णुपाद प्रसूतासि वैष्णवीनामधारिणी।
पाहि मां सर्वतो रक्षेत् गंगा त्रिपथगामिनी ।।२।।
मन्दाकिनी सदापातु देहान्ते सर्ववल्लभा।
अलकनन्दा च वामभागे पृथिव्यां पातु तिष्ठति ।।३।।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा।
पञ्चाक्षरमिमं मन्त्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।।४।।
रोगी रोगात् प्रमुच्येत् बद्धोमुच्येत् बन्धनात्।
गर्भिणी जनयेत् पुत्रं बन्ध्या पुत्रवती भवेत् ।।५।।
गंगास्नानमात्रेण निष्पापो जायते नरः।
यः पठेत् गृहमध्येतु गंगा स्नानफलं लभेत् ।।६।।
स्नानकाले पठेद्यस्तु शतकोटिफलं लभेत्।
यः पठेत् प्रयतो भक्त्या मुक्तः कोटिकुलैः सह ।।७।।

शत्रु-वशीकरण मन्त्र—जिसे प्रबल शत्रु का भय बना रहता हो, शत्रु द्वारा हर कार्य में विघ्न डाला जाए; ऐसे शत्रु को वश में करने के लिए, उसकी हरकतें बन्द करने के लिए इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र—ॐ चामुण्डे क्रां ह्रीं ठं ठः ठः फट् स्वाहा

पहले इस मन्त्र से तीन दिन तक १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए। फिर एक हजार जप करके इसी मन्त्र को सफेद भोजपत्र पर घी और सिन्दूर से लिख कर शहद में डाल दे। जब तक भोजपत्र शहद में पड़ा रहेगा, तब तक शत्रु निश्चेष्ट बना रहेगा।

चिन्ता निवारणमन्त्र—कुछ लोगों को अकारण चिन्ताएँ घेरे रहती हैं और कुछ लोग अभाववश, संकटापन्न हालत में चिन्तित रहते हैं। सभी प्रकार की चिन्ताओं को दूर करने के लिए नीचे लिखा मन्त्र बहुत ही लाभदायक है।

मन्त्र—ॐ वं वं वं नमो रुद्रेभ्यो क्षरं क्षरां क्षरीं स्वाहा

इस मन्त्र का जप नित्य १०८ बार जपते रहने से चिन्ताएँ मिट जाती हैं।

व्याधियों, चिन्ताओं का निवारण मन्त्र—कुछ लोग माला लेकर जपने में लज्जा या संकोच करते हैं और व्याधियों, चिन्ताओं के कारण अन्दर ही घुलते रहते हैं, किसी से कुछ कहते भी नहीं हैं। कृत्रिमता का आवरण ओढ़ने वाले या अन्तर्मुखी व्यक्तियों के लिए नीचे लिखा मन्त्र बहुत ही लाभदायक है।

मन्त्र—ॐ हं शं शां ॐ ह्रीं फट् स्वाहा

एकान्त में बैठकर इस मन्त्र का जप मन ही मन करना चाहिए। जब तक मन लगे, तभी तक जप किया जाए।

दाम्पत्य-सुखवर्द्धक मन्त्र—आजकल अधिकतर पति-पत्नी के बीच मनमुटाव, खिचाव-तनाव बना रहता है। विशुद्ध प्रेम प्राप्त करने की भावना रख कर इस मन्त्र का जप नित्य १०८ बार तेरह दिन तक करने से पति-पत्नी के बीच सौमनस्य बढ़ता है।

मन्त्र—ॐ कं कं ञं ञः मम········वश्यं कुरुकुरु स्वाहा।

(······) खाली जगह में नाम बोलना चाहिए। पत्नी पति कहे और पति पत्नी कहे।

रोग-निवारण मंत्र

मंत्र—ॐ सं सां सिं सीं सुं सूं सें सैं सों सौं सं सः अमृतवर्चसे स्वाहा ।

विधि—तांबे के पंचपात्र में जल भर कर इस मन्त्र को १०८ बार पढ़कर जल को अभिमंत्रित कर रोगी को पिलाने से असाध्य रोग भी २१ दिन में शान्त हो जाता है ।

प्रेतवाधा-निवारण मंत्र

मंत्र—ॐ हं क्षं हं सः स्वाहा

इन बीजाक्षरों का जप करते हुए प्रेत वाधाग्रस्त व्यक्ति के पास इन्हीं मन्त्रों से हवन कर हवन का धुवाँ प्रेतग्रस्त व्यक्ति के शरीर में दोनों हथोलियों से ऊपर से नीचे तक संस्पर्श कराना चाहिए ।

दरिद्रता-निवारण मंत्र

मंत्र—ॐ नमः कालिके ह्रां ह्रीं ह्रैं स्वाहा

२१ दिन तक १०८ बार इस मन्त्र से हवन करके फिर नित्य प्रति १००० जप करते रहने से निर्धनता, गरीबी, दरिद्रता जाती है और उत्तरोत्तर सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती हैं ।

विविधमन्त्र-साधना

एकाक्षर गणेश मन्त्र—'गं' यह गणेशजी का एकाक्षर मन्त्र है । यह सर्वसिद्धिप्रद है । चार लाख जप करने से सिद्ध होता है ।

अट्ठाइस अक्षरी गणेश मंत्र—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं में वशमानय ।

यह महागणेशमन्त्र है । चार लाख चौबीस हजार जपने पर यह सिद्ध होता है । किसी को अपने अनुकूल बनाने के लिए यह वशीकरण मन्त्र भी है ।

बारह अक्षरों का गणेश मंत्र—ॐ ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा । यह संकटनाशक मन्त्र है । एक लाख जपने से मन्त्र सिद्ध होता है ।

ग्यारह अक्षरों का गणेश मंत्र—ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा। यह सम्मोहन मंत्र है, तीन लाख जपने से सिद्ध होता है।

एकाक्षर हरिद्रा गणेश-मंत्र—'ग्लं' इसकी सिद्धि चार लाख जपने से होती है।

द्व्यक्षर हरिद्रा-गणेशमंत्र—श्रीं ग्लौं इसका ४ लाख जप करने से कार्य सिद्ध होता है। उपर्युक्त गणपति मन्त्रों का जप पूरा होने पर घृत, मधु, शर्करा और हरिद्राचूर्ण मिश्रित तण्डुल (चावल) से दशमांश हवन करना चाहिए।

सर्वार्थसिद्धिप्रद-मंत्र—गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। जो भी कामना रख कर इस मन्त्र का जप दस हजार किया जाए और अन्त में दशांश हवन किया जाए तो कामना पूर्ति के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप का बोध भी होता है।

संकटनाशक मंत्र—क्लीं कृष्णाय नमः इस मन्त्र का नित्य जप करते रहने से कोई संकट नहीं उत्पन्न होता है।

मनोरथप्रद मंत्र—श्री कृष्ण गोविन्दाय नमः स्वाहा यह मन्त्र बहुत ही फलप्रद है। नित्य १०८ बार जप करते रहने से सारी कामनाएँ पूरी होती रहती हैं।

क्लेशनाशक, बुद्धि-विवेकप्रद मंत्र

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

हर प्रकार का क्लेश इसके स्मरण, जप से दूर हो जाता है। दुविधा-संशय और संकट की स्थिति में इसका जप विवेक-बुद्धि प्रदान करता है

पञ्चामृत मंत्र—

ॐ अँ अच्युताय नमः
ॐ सँ अनन्ताय नमः
ॐ हें अमृताय नमः

ॐ ऐं गोविन्दाय नमः

ॐ वं विष्णवे नमः

१. इस मन्त्र का पाँच हजार जप करने से असाध्य रोग दूर होते हैं ।

२. रात में ताँबे के पंचपात्र में गंगाजल और तुलसी रखकर प्रातः काल उक्त पंचामृत मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल-तुलसी रोगी को पिलाने से महारोग दूर होते हैं । तुलसी निगल जाना चाहिए ।

सन्तान गोपाल-मन्त्र

(१) देवकी सुत गोविन्द, वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण, त्वामहं शरणं गतः ।।

सन्तान के इच्छुक पति-पत्नी तुलसी के विरवा के पास बैठकर तुलसी की माला से नित्य ११ माला ११ दिन तक इस मन्त्र का जप करें । ११ दिन तक दोनों ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए फलाहार करें । ११ दिन बाद शुद्ध सात्विक भोजन किया करें और एकादशी का व्रत किया करें । नित्य प्रति उक्त मन्त्र का जप करें । साल भर के अन्दर सन्तान उत्पन्न होने पर तुलसी का विधिवत् पूजन करें ।

(२) ॐ नमो भगवते जगत्प्रसूतये नमः ।

इस मन्त्र की भी विधि पहले मन्त्र की तरह है । जप कर चुकने के बाद और जप के प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना और उनका ध्यान किया जाना चाहिए ।

ध्यान

शंखं चक्रं गदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम् ।
अङ्के शयानं देवक्याः सूतिका मन्दिरे शुभे ।।

रुक्मिणी वल्लभमंत्र

ॐ नमो भगवते रुक्मिणी वल्लभाय स्वाहा ।

यह मन्त्र कुमारी कन्या को अनुकूल वर प्राप्त करने में सिद्ध है ।

कुमारी कन्या स्नान करके लाल वस्त्र धारण कर इस मन्त्र का जप दो माला प्रतिदिन नियमित रूप से करे। केवल ९१ दिन जप करने मात्र से अनुकूल वर की प्राप्ति होती है।

श्री लक्ष्मीनारायण मंत्र

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं लक्ष्मीनारायणाय नमः।

भगवान् लक्ष्मीनारायण का यह सिद्ध मन्त्र है। इसे प्रतिदिन जपते रहने से अथवा इस मन्त्र से प्रतिदिन आहुति देने से पारिवारिक सुख, शान्ति, समृद्धि की वृद्धि होती है। घर में लक्ष्मी का निवास होता है। प्रतिदिन एक माला अवश्य जपा जाए। जप समाप्त होने पर भगवान् लक्ष्मीनारायण को निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए प्रणिपात करना चाहिए—

लक्ष्मी चारु कुचद्वन्द्वं कुंकुमाङ्कितवक्षसे।
नमो लक्ष्मीपते तुभ्यं सर्वाभीष्ट प्रदायिने॥

महामंत्र

ॐ नमो नारायणाय।

यह अमोघ मन्त्र है। सभी अभीष्ट सिद्ध करता है। दुःख-दैन्य, संकट, विपत्ति का नाशक यह मन्त्र अपनी तेजस्विता के कारण महामन्त्र कहा जाता है। जैसे भी बन पड़े; इस मन्त्र का जप, स्मरण, कीर्तन करने से योग और भोग दोनों करतलगत होते हैं।

आपद्हर्त्ता श्रीराम मन्त्र

आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
रामाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

इस स्तुतिमन्त्र का सोते, जागते, उठते-बैठते, किसी भी स्थिति में स्मरण, जप करने से विपत्तियों, संकटों का नाश होता है। रोगी को इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल पिलाने से रोग दूर होता है; भूत, प्रेत, की बाधा दूर होती है।

त्रयोदशाक्षर श्रीराम मन्त्र

श्रीराम जयराम जय जय राम

इसका जप, कीर्तन सुख, समृद्धि, शान्तिपुष्टिवर्द्धक है और असाध्य रोगों को दूर करता है।

हरिमन्त्र

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

असाध्यकष्ट, असह्य पीड़ा में तन्मय होकर इस मन्त्र का उच्चारण किया जाए तो अद्भुत लाभ और अनुभव होता है। बहुत ही तेजस्वी मन्त्र है। हर प्रयोजन को सिद्ध करता है। नियमित अनुष्ठान करने से वाणी सिद्ध होती है। भविष्य दर्शन होता है।

नृसिंह मन्त्र

ॐ नमो नरसिंहाय हिरण्यकशिपु वक्षःस्थलविदारणाय त्रिभुवन व्यापकाय भूतप्रेत पिशाच डाकिनी कुलोन्मूलनाय स्तम्भोद्भवाय समस्तदोषान् हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ठः ठः एह्येहि रुद्र आज्ञापय स्वाहा।

यह मन्त्र समस्त रोग, दोष, भूत, पिशाच, बाधाओं को तत्काल नष्ट करता है।

साधनाविधि—किसी भी दिन रात दस बजे से १२ बजे के बीच इस मन्त्र से १०८ बार आहुतियाँ आम की लकड़ी और अष्टांग हवन सामग्री से देने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद ५१ दिन तक ११ माला नित्य जपने से मन्त्र जाग्रत हो जाता है।

रोगी या प्रेतबाधाग्रस्त व्यक्ति पर कुश से जल छिड़कते हुए मन्त्र को पढ़ा जाए अथवा उसके सामने हवन किया जाए या मोर पंख से झाड़ दिया जाए।

शैवमन्त्र

भगवान् शिव की साधना नहीं, आराधना की जाती है। समस्त विद्याओं, कलाओं, यंत्र-मन्त्र-तंत्र के द्रष्टा, स्रष्टा, प्रवक्ता भगवान् शिव हैं। केवल शिव-शिव कहने मात्र से सभी संकट, रोग, दोष, भय, बाधाएँ दूर होती हैं। उलटा-सीधा, टेढ़े-मेढ़े, उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, भागते-दौड़ते हर स्थिति में शिव-शिव कहने मात्र से सारे पाप और सारी अपवित्रताएँ दूर होती है।

शिव के पंचाक्षर (नमः शिवाय) और षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) मन्त्रों की अपार महिमा है। शिवार्चन करके इनमें से कोई एक मन्त्र जपने से अमित लाभ होता है। भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए पंचाक्षर मंत्र का जप करना चाहिए और ज्ञान, मोक्ष प्राप्त करने के लिए षडक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। शिवार्चन और मन्त्र जप करने पर ही फल मिलता है।

श्रीहनुमत्साधना

रुद्रावतार श्री हनुमान उग्र देवता हैं। इनकी साधना, उपासना तत्काल फल देती है, किन्तु संयम, नियम, ब्रह्मचर्य पालन करने में तनिक-सी भूल भयंकर परिणाम घटित करती है। इसलिए हनुमान जी की साधना-उपासना बड़ी सावधानी और निष्ठा से की जानी चाहिए। हनुमान जी को सिद्ध करने का मूल मन्त्र है—

ॐ नमो भगवते आञ्यनेयाय महाबलाय स्वाहा।

विधि—एकान्त में नदी तट या गाँव के बाहर एकान्त मंदिर अथवा गिरिगुहा में जाकर शनिवार के दिन से ब्राह्ममुहुर्त्त में या आधी-रात से आराधना प्रारंभ करनी चाहिए। कुशासन पर पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए। शरीर और मन से पूर्णतया पवित्र होकर तत्त्व शुद्धि और भूतशुद्धि करे फिर संकल्प करके विनियोग करे; तत्पश्चात् मूलमन्त्र के बीजों से करन्यास करे।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीअष्टादशाक्षर मन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः पवनकुमार हनूमानदेवता हं बीजं स्वाहा शक्तिः जपे विनियोगः।

करन्यास

ॐ	नमो	भगवते	आञ्जनेयाय	अंगुष्ठाभ्यां	नमः
ॐ	नमो	भगवते	रुद्रमूर्त्तये	तर्जनीभ्यां	नमः
ॐ	नमो	भगवते	मरुत्सुताय	मध्यमाभ्यां	नमः
ॐ	नमो	भगवते	अग्निगर्भाय	अनामिकाभ्यां	हुं
ॐ	नमो	भगवते	रामदूताय	कनिष्ठिकाभ्याँ	वौषट्
ॐ	नमो	भगवते	ब्रह्मास्त्रनिवारणाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः		

इसके बाद ध्यान करे—

तप्त काञ्चन संकाशं हृदये निहिताञ्जलिम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद्वानर नायकम्॥

ध्यान के बाद रुद्राक्ष की माला से मूलमन्त्र का जप करना चाहिए। ध्यान और जप से पूर्व हनुमानजी का पूजन षोड़शोपचार से करे। घी का दीपक साधना काल तक जलता रहे। प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जपने से हनुमानजी की सिद्धि २१ दिन में होती है। ग्यारहवें दिन हनुमानजी स्वयं प्रकट होते हैं। यह उग्र साधना किसी विशेषज्ञ की देखरेख में की जाए। केवल पुस्तक पढ़ कर साधना करना खतरनाक है।

प्रेतबाधानाशक-मन्त्र

१. प्रनवउँ पवनकुमार, खलवन पावक ग्यान घन।
जासु हृदयँ आगार, बसहि राम सर चाप धर॥

११ माला नित्य ४६ दिन तक जपने से प्रेत बाधा दूर होती है।

२. हनुमानजी की मूर्ति या चित्र की पंचोपचार पूजा करके सात

शनिवार तक प्रत्येक शनिवार को हनुमान चालीसा के सौ पाठ करने से प्रेत बाधा दूर होती है।

(३) ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ	२४	३१	२	७	
ॐ	६	३	२८	२७	ॐ
ॐ	३०	२५	८	१	ॐ
ॐ	४	५	२६	२९	ॐ
ॐ					ॐ

ॐ ॐ ॐ

इस यंत्र को शनिवार को भोजपत्र पर लिखकर और मढ़ाकर घर के सभी कमरों में टाँग देने से प्रेतबाधा दूर होती है।

मंत्रराज

ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः।

विनियोग—अस्य मंत्रराजस्य श्रीरामचन्द्रः ऋषिर्जगती छन्दः हनुमान देवता ह्सौं बीजं ह्स्फ्रें शक्तिः जपे विनियोगः।

उपर्युक्त हनुमान जी के मंत्र में ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं—ये छह बीज हैं। इन छहों बीजों में क्रमशः मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कान, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिंग, दोनों जानु, दोनों चरणों पर अंगन्यास करना चाहिए।

इसके बाद मंत्रराज के बारह अक्षरों का न्यास करे। तत्पश्चात् छह

बीज और दो पद इन आठों का क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, उरु, जंघा और चरणों का न्यास करे, फिर ध्यान करे।

ध्यान

उद्यत्कोटयर्क संकाशां, जगत्प्रक्षोभ कारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रि ध्याननिष्ठं, सुग्रीवप्रमुखार्चितम् ।।
वित्रासयन्तं नादेन, रक्षसां मारुतिं भजे ।।

ध्यान के बाद ११००० जप करना चाहिये। यदि ११ हजार नित्य जप करना संभव न हो तो ११०० जप नित्य किया जाए। एक लाख जप करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। शनिवार के दिन से प्रारम्भ कर मंगलवार को समाप्त करना चाहिए। जिस दिन जप समाप्त हो; उसी दिन दही, दूध, घी और धान से दस हजार आहुति देनी चाहिए।

मन्त्र सिद्ध हो जाने के बाद

१. इस मंत्र से १०८ बार पानी फूंक कर पिलाने से महाविष दूर हो जाता है। भूत, अपस्मार, कृत्याज्वर दूर करने के लिए इस मंत्र से अभिमंत्रित भस्म या जल से क्रोध पूर्वक रोगी के ऊपर प्रहार की मुद्रा में छोड़े, तीन दिन में रोग दूर हो जाते हैं। नित्य अभिमंत्रित जल पीने से भी २१ दिन में महारोग दूर हो जाते हैं।

२. उक्त मंत्र से अभिमंत्रित भस्म अंगों में लगा कर युद्धक्षेत्र में जाने से मल्ल युद्ध, द्वन्द्व युद्ध अथवा शस्त्रास्त्र युद्ध में विजय प्राप्त होती है।

३. शस्त्राघात, लूता, विस्फोट, मकरी, अर्द्धांगी, कारबंकल, कंठमाला आदि में तीन बार मंत्र पढ़ कर फूंक मार कर भस्म लगा देने से तुरन्त आराम मिलता है। तीन दिन में रोग दूर हो जाते हैं।

४. करंजमवृक्ष की जड़ लाकर अंगूठा के बराबर हनुमान जी की प्रतिमा बना कर उस की प्राणप्रतिष्ठा करके उस पर घी मिश्रित सिन्दूर

लगा दिया जाए। फिर उस प्रतिमा का मुख जिस घर के द्वार पर घर की ओर करके मंत्रोच्चार पूर्वक गाड़ दिया जाए तो उस घर में ग्रह दोष, अभिचार, रोग- दोष, अग्निभय, चोरभय, राजभय कभी नहीं होता है। आधि-व्याधि दूर होती है और सुखसमृद्धि की वृद्धि होती है।

५. भूमि पर हनुमान जी का चित्र बना कर चित्र के सामने के भाग में उपर्युक्त मंत्र लिख दे फिर साध्य व्यक्ति या वस्तु का द्वितीयान्त (जैसे राम का द्वितीयान्त रामं) नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे फिर बाएँ हाथ से मिटाये। इस तरह दाहिने हाथ से मंत्र और नाम के आगे विमोचय विमोचय १०८ बार लिखे और बाएँ हाथ से मिटाये तो उस व्यक्ति को कारागार से मुक्ति मिल जाती है।

६. मूल मंत्र के अंतिम अंश हनुमते नमः और आदि बीज ह्रौं को जोड़कर शेष अक्षरों से पंचाक्षर मंत्र बनता है। यह मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करता है।

७. विनियोग में इस मन्त्र के ऋषि रामचन्द्र, छन्द गायत्री, देवता हनुमान हैं। सम्पूर्ण कामना की पूर्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है।

षडङ्गन्यास में इस मन्त्र से पाँच बीजों और सम्पूर्ण मन्त्र से षडंग-न्यास किया जाता है। रामदूत, सीताशोक विनाशन, लंकाप्रासाद भंजन —इन नामों से पहले हनुमान यह नाम और है। हनुमान आदि पाँच नामों में पाँच बीज और अन्त में 'ङे' विभक्ति लगा दी जाती है। अंतिम नाम के साथ उक्त पाँचों बीज जुड़ते हैं। ध्यान पूजन पूर्ववत् है।

सर्वदुष्टग्रह-निवारणमंत्र

ॐ नमो हनुमते पाहि-पाहि एहि-एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनी-डाकिनी नां विषम दुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मृत्युं मारय मारय भयं शोषय शोषय प्रज्ज्वल—प्रज्ज्वल भूतमण्डल

पिशाचमण्डल निरसनाय भूतज्वर प्रेतज्वर चातुर्थिकज्वर विष्णुज्वर माहेश्वर ज्वरान् छिन्धि-छिन्धि भिन्धि भिन्धि अक्षिशूल पक्षशूल शिरोऽभ्यन्तरशूल गुल्मशूल पित्तवातशूल ब्रह्मराक्षसकुल पिशाचकुल प्रबलनागकुलच्छेदनं विषं निर्विषं कुरु कुरु झटिति झटिति ॐ ह्लां सर्वदुष्टग्रहान्निवारणाय स्वाहा ।

ॐ नमो हनुमते पवनपुत्राय वैश्वानरमुखाय पापदृष्टि-पाषण्डदृष्टि हनुमदाज्ञा स्फुर ॐ स्वाहा ।

इन मन्त्रों का जप, अनुष्ठान पूर्ण होने पर दशांश जप या हवन करके ब्राह्मण भोजन भी कराना चाहिए ।

न्यासविधि

ॐ ह्लां अञ्जनीसुताय	अंगुष्ठाभ्यांनमः
ॐ ह्लीं रुद्रमूर्तये	तर्जनीभ्यां नमः
ॐ ह्लूं रामदूताय	मध्यमाभ्यां नमः
ॐ ह्लैं वायुपुत्राय	अनामिकाभ्यां नमः
ॐ ह्लौं अग्निगर्भाय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः
ॐ ह्लः ब्रह्मास्त्र निवारणाय	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः
ॐ अञ्जनीसुताय	हृदयाय नमः
ॐ रुद्रमूर्तये	शिरसे स्वाहा
ॐ रामदूताय	शिखायै वषट्
ॐ वायुपुत्राय	कवचायहुम्
ॐ अग्निगर्भाय	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ब्रह्मास्त्र निवारणाय	अस्त्राय फट्

अन्य अमोघ प्रयोग

१. हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्—इस मन्त्र का एक लाख जप करने से मनुष्य शत्रु पर विजयी होता है। अर्जुन इसी मन्त्र की साधना करके अजेय वीर प्रसिद्ध हुआ है ।

२. वाल्मीकीय रामायण या रामचरितमानस के प्रत्येक श्लोक या चौपाई में इस मन्त्र का संपुट लगाकर पाठ करने से सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

३. रां रामाय नमः या ॐ हनुमते नमः का संपुट लगाकर रामायण का नवाह्न पाठ करने से हनुमान जी की प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह प्रकट हो कर वरदान देते हैं। तुलसीदास जी ने इन्हीं का संपुट लगा कर वाल्मीकीय रामायण कर पाठ किया था. और हनुमान जी से श्रीराम के दर्शनों का वरदान मांगा था।

४. मूलरामायण में नीचे लिखे श्लोक का संपुट लगाकर पाठ करने से विवाह होता है अथवा बिछुड़ी हुई पत्नी प्राप्त होती है :

स देवि नित्यं परितप्यमान—
स्त्वामेव सीत्येत्यभिभाषमाणः
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥

५. शत्रुनिवारण, आत्मरक्षार्थ, खोई हुई प्रतिष्ठा की पुनः प्राप्ति के लिए तथा कठिन-से-कठिन कार्य की सफलता के लिए नीचे लिखे चार श्लोकों का ५१००० जप करना चाहिए। ५१००० जपसंख्या पूरी होते-होते असम्भव कार्य सम्भव होकर सफलता मिलती है। जप के बाद दशमांश हवन किया जाए। नित्य हनुमान जी का षोड़शोपचार पूजन कर जप करना चाहिए। पूर्ण ब्रह्मचर्य और संयम, नियम का पालन निष्ठापूर्वक किया जाए। यह अमोघ प्रयोग है। कभी भी विफल होने वाला नहीं है।

मन्त्र—ॐ जयत्यति बलो रामो, लक्ष्मणश्च महाबलो।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां, निहन्ता मरुतात्मजः ॥
न रावण सहस्रं मे, युद्धे प्रतिबलं भवेत् ॥
शिलाभिश्च प्रहरतः, पादपैश्च सहस्रशः ॥
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीं ।
समृद्धयर्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ॐ

हनुमत्साधना के प्रयोग

१. किसी मास के शुक्ल पक्ष के मंगल के दिन से नीचे लिखा प्रयोग इस प्रकार किया जाए । एक दिन पहले अर्थात् सोमवार को सवा पाव उत्तम गुड़, एक छटाँक भुने हुए अच्छे चने और सवापाव गाय का शुद्ध घी रख लिया जाए । गुड़ के छोटे-छोटे इक्कीस टुकड़े कर लिए जाएँ । २१ टुकड़ों के बाद जो गुड़ बच जाए उसे अलग पवित्रपात्र में रख दिया जाए । साफ रुई की २२ फूल बत्तियाँ बना ली जाएँ और उन्हें घी से तर कर लिया जाए । गुड़, घी और फूलबत्तियों को अलग-अलग स्वच्छ पात्र में रखकर किसी ऐसे शुद्ध स्थान में रखा जाए, जिसे प्रयोगकर्त्ता के अलावा कोई और स्पर्श न कर सके और न चींटी, कीड़े-मकोड़े लग सकें । वहीं पर एक दियासलाई रख दी जाए और एक खाली पात्र रख दिया जाए, जिसमें रखकर उक्त वस्तुएँ प्रतिदिन पूजा के लिए रखी जाएँ ।

अब किसी ऐसे मन्दिर में नित्य पूजन की व्यवस्था की जाए, जहाँ हनुमानजी का स्थान हो और यदि नगर या गाँव से बाहर हो तो सर्वोत्तम है अन्यथा प्रयोगकर्त्ता के निवास से एक दो फर्लाङ्ग दूर अवश्य हो । घर पर यह प्रयोग नहीं हो सकता है । जितना निर्जन और एकान्त स्थान होगा, उतनी ही जल्दी सफलता मिलती है ।

अब मंगलवार को ब्राह्ममुहुर्त में या सूर्योदय से पूर्व उठ कर मौनव्रत धारण कर स्नान आदि करके तीनों पात्रों से एक टुकड़ा गुड़, एक फूल-

बत्ती और ग्यारह चने लेकर खाली रखे हुए पात्र में रखकर उसी में दियासलाई रख ली जाए और किसी स्वच्छ वस्त्र से ढाँक दिया जाए। फिर हनुमानजी के मन्दिर में जाते हुए दाएँ-बाएँ, पीछे बिना देखे हुए और मौन धारण किए हुए, नंगे पाँव हनुमान जी के मन्दिर में पहुँच कर पहले घी की बत्ती जलाए, फिर ११ चने और गुड़ की एक डली हनुमानजी में चढ़ाए। इसके बाद हनुमानजी के सामने लेटकर साष्टांग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए मन-ही-मन प्रार्थना करे। इसके बाद स्तुति, प्रणाम कर जब घर की ओर लौटे तब उसी तरह मौन रहे और इधर-उधर न देखे। घर पहुँच कर निश्चित स्थान पर पूजन-सामग्री का पात्र रख कर सात बार 'राम' 'राम' का उच्चारण कर मौन को तोड़े। रात में सोने से पहले ११ बार हनुमान चालीसा का पाठ करे और अपनी कामना की सिद्धि के लिए हनुमान जी से प्रार्थना कर सो जाए। इस तरह २१ दिन तक लगातार इसी क्रम से आराधना करने के बाद बाईसवें दिन मंगलवार को प्रातः-काल स्नान आदि करके सवा सेर आटे का एक रोट बनाकर कंडी (उपले) की आग में उसे पका ले। यदि सवासेर के एक रोट को पकाने में असुविधा हो तो पाव-पाव भर विभक्त करके पाँच रोट बनाकर उसमें पहले से रखा हुआ गाय का घी आवश्यकतानुसार मिलाकर पहले का बचा हुआ गुड़ मिलाकर चूरमा बना लें। चूरमे को थाली में रखकर बचे हुए सारे चने और शेष घी सहित २२वीं फूलबत्ती लेकर पूर्व दिनों की भाँति मौन रहकर दाएँ-बाएँ, पीछे देखे बिना मन्दिर में जाकर पहले फूलबत्ती जला दे फिर चने और चूरमा का भोग रख कर दण्डवत् प्रणाम कर घर वापस आए। पवित्र स्थान में भोग-प्रसाद रख कर सात बार 'राम' 'राम' कह कर मौन भंग करे। प्रयोग काल में पूर्ण ब्रह्मचर्य रखे।

प्रयोगकर्त्ता उस दिन दोनों समय चने और चूरमा के प्रसाद का भोजन करे। शेष [illegible]ों का प्रसाद बाँट दिया जाए। इस प्रयोग से

निश्चय ही मनोरथ सिद्ध होता है। इस प्रयोग को यदि स्त्री करना चाहे तो वही स्त्री कर सकती है, जिसका मासिक धर्म बन्द हो गया हो।

२. प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहन कर शुद्ध पात्र में कुएँ या नदी का जल लेकर हनुमानजी के मन्दिर में जाकर हनुमानजी को जल चढ़ाए, फिर एक दाना उड़द का लेकर हनुमानजी के सिर पर रखकर ११ प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा के बाद साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए निवेदन करे और हनुमानजी के सिर पर चढ़ाए हुए उड़द के दाने को लेकर घर आकर उसे अलग एक पात्र में शुद्ध स्थान पर रख दे। इस तरह प्रति-दिन एक-एक दाना उड़द का बढ़ाते जाना चाहिए। ४१वें दिन ४१ दाने रखकर बाद में ४२वें दिन से एक-एक उड़द का दाना कम करते जाना चाहिए और उसी प्रकार अलग रखते जाना चाहिए। इस तरह ८१वें दिन एक दाना चढ़ाकर अनुष्ठान पूरा करना चाहिए। ८१ दिन के ८१ दाने लेकर नदी में प्रवाहित कर दिए जाएँ। रात में हनुमानजी स्वप्न में दर्शन देकर मनोकामना पूरी करते हैं।

३. यदि किसी व्यक्ति को किसी काम में दुविधा या असमंजस हो अथवा भय और घबराहट हो। कार्य की सफलता में सन्देह हो। ग्रह-नक्षत्र का कुयोग हो अथवा भूत-प्रेत की बाधा हो। काम बिगड़ता हो, सफलता न मिलती हो तो उसे बजरंग बाण का पाठ करना चाहिए। पाठ पूरा होते ही आत्मबल, संकल्प शक्ति आ जाती है। भय, आशंका घबराहट दूर हो जाती है। तत्काल फल मिलता है। यदि नित्य पाठ करे तो भय, आशंका असफलता कभी निकट नहीं आती है।

नित्य अनुष्ठान विधि—हनुमानजी के मन्दिर में जाकर या घर पर ही हनुमानजी की मूर्ति या चित्र सामने रखकर आत्मविश्वास पूर्वक हनुमानजी का ध्यान करे। ध्यान करते हुए यह धारणा मन में करे कि

हनुमानजी की दिव्य शक्तियाँ धीरे-धीरे शरीर के अंग-अंग में प्रवेश कर रही हैं। शरीर के हर परमाणु दिव्य शक्तियों से उत्तेजित होते हैं। इसके बाद स्नान, चन्दन, पुष्प, आरती और फल के भोग द्वारा हनुमान जी का पूजन कर प्रणाम पूर्वक यह स्तुति करे—

अतुलित बल धामं हेम शैलाभदेहं
दनुज बन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं, वानराणामधीशं
रघुपति प्रियभक्तं, वातजातं नमामि॥

इसके बाद बजरंग बाण का पाठ करना चाहिए। इन अनुष्ठान को मासिक धर्म के दिनों को छोड़ कर स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। बजरंग-बाण कण्ठस्थ हो जाने पर इससे भूत, नजर, टोना, भय, अनिद्रारोग आदि बाधाएँ दूर की जा सकती हैं। इसका नित्य पाठ करने से संकट-निवारण होता है।

४. (क) हनूमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्रो महाबल।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तुते॥

इसका जप करने से अथवा हनुमानजी के सामने दीप ज्योति जला कर जप करने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

(ख) नासै रोग हरै सब पीरा, जपत निरंतर हनुमत बीरा।

(ग) बुद्धि हीन तनु जानिके सुमिरौं पवन कुमार।
बल बुधि विद्या देहु मोहि हरहु कलेस विकार॥

इनका जप करने से रोग, क्लेश, गृहकलह, स्नायुदौर्बल्य दूर होते हैं।

(घ) ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धगधगित आयुराष परुडाह।

इस मन्त्र का ११०० रोज जप ११ दिन तक करे। प्रतिदिन जप करने के बाद प्लीहा रोग से पीड़ित व्यक्ति को सीधा लिटाकर उसके पेट

पर नागरबेल के पत्ते रखे। पत्तों के ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़े के ऊपर सूखे बाँस के छोटे-छोटे, पतले-पतले टुकड़े रख दे। इसके बाद बेर की सूखी लकड़ी लेकर उसे जंगली पत्थर से उत्पन्न आग से जलाए और रोगी के पेट पर रखे हुए बाँस के टुकड़ों को उपर्युक्त मन्त्र को पढ़ते हुए जलती हुई लकड़ी से सात बार ताड़ित करे। इससे प्लीहा रोग दूर हो जाता है।

प्रत्येक प्रयोजन की सिद्धि के लिए तथा समस्त विघ्नों के निवारण के लिए और शत्रुभय दूर करने के लिए उपर्युक्त तीन मन्त्र बहुत ही अमोघ हैं। तीनों की अनुष्ठान विधि एक ही है, किन्तु मन्त्र भिन्न-भिन्न हैं।

तीन में से किसी भी मन्त्र को सिद्ध करने अथवा उसका अनुष्ठान करने के लिए पहले न्यास किया जाए, फिर ध्यान किया जाए और बाद मन्त्र को पढ़ते हुए १०८ बार हवन किया जाए अथवा पाठ या जप इसके किया जाए।

ध्यान

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादि समस्त वानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम्॥

कार्य-सिद्धि के लिए मन्त्र

ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थ समीपस्थान् छिन्धि-छिन्धि भिन्धि-भिन्धि सर्वकाल दुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलान् क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय। ॐ नमो हनुमते ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्। देहि ॐ शिव सिद्धिं ॐ ह्रां ॐ ह्रीं ॐ ह्रूं ॐ ह्रैं ॐ ह्रौं ॐ ह्रः स्वाहा।

विधि—गाँव से बाहर हनुमानजी के मन्दिर में जाकर हनुमान जी की पंचोपचार पूजा करके घृत-दीप जलाकर भिगोई हुई चना की दाल और गुड़ का भोग लगाकर उक्त मन्त्र का जप सात्विक कार्य के लिए १०८ बार नित्य ११ दिन तक करे और अन्त में दशमांश हवन करे। तामसी कार्यों (मारण, उच्चाटन आदि) के लिए रात १० बजे के बाद से लाल वस्त्र पहनकर संयम-नियमक पूर्वक ६ दिन तक १००० जप नित्य किया जाए।

शिर रोग दूर करने के लिए

लंका में बैठ के माथ हिलावे हनुमन्त।
सो देखिके राक्षसगण पराय दूरंत॥
बैठी सीतादेवी अशोक वन में।
देखि हनुमान को आनन्द भई मन में॥
गई उर विवाद देवी स्थिर दरशाय।
'अमुक' के सिर व्यथा पराय॥
'अमुक' के नहीं कछु पीर नहिं भार।
आदेश कामाख्या हरिदासी चण्डी की दोहाई॥

विधि—जिसके शिर में पीड़ा हो उसे दक्षिण की ओर मुँह करा कर बैठा दे फिर सिर को हाथ से पकड़ कर मन्त्रोच्चारण करते हुए झाड़े। जहाँ 'अमुक' है वहाँ रोगी का नाम लिया जाए।

आधा सीसी दूर करने के लिए

१. वन में ब्याई अंजनी कच्चे वनफल खाय।
हाँक मारी हनुवन्त ने इस पिंड से आधासीस उतर जाए॥

२. ॐ नमो वन में ब्याई वानरी उछल वृक्ष में जाए।
कूद-कूद शाखामरी कच्चे वनफल खाय॥

आधा तांड़े आधा फोड़े आधा देय गिराय।
हंकारत हनुमान जी आधासीसी जाय॥

इन दो में से किसी एक मन्त्र को पढ़ते हुए भस्म की फूंक मार कर झाड़ना चाहिए।

बटुक भैरव की साधना

वटुक भैरव के मन्त्र को सिद्ध करने से साधक के हर कार्य निर्विघ्न पूरे होते हैं। प्रतिदिन नियमित रूप से जपते रहने से जैसे-जैसे जप-संख्या बढ़ती है, वैसे ही साधक को प्रत्यक्ष अनुभूतियां होती हैं। वटुक भैरव का मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक की बुद्धि निर्मल हो जाती है। हर प्रयोजन की सफलता के लिए मूलमन्त्र का जप परम लाभदायक सिद्ध हुआ है।

मूलमंत्र

ह्रीं वटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं

विधि—रात में पवित्र, एकान्त स्थान पर अथवा भैरव के मंदिर में घी का दीपक जलाकर रुद्राक्ष की माला से कुशासन पर व्यासन से बैठ कर उक्त मूलमन्त्र का १०८ बार नित्य जप करना चाहिए। २१ दिन में मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि नियम और निष्ठापूर्वक इस मन्त्र का जप १ लाख किया जाए और दशमांश हवन किया जाए तो वटुक भैरव साक्षात् प्रकट होकर साधक का अभीष्ट पूरा करते हैं।

वटुक भैरव के सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के ध्यान हैं। तीनों प्रकार के ध्यान विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। मूलमन्त्र का जप करने से पूर्व प्रयोजन के अनुसार ध्यान करना चाहिए।

सात्विक ध्यान

वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रं,
दिव्या कल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणीनूपुराद्यैः।

दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रम्,
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम् ।।

राजसिक ध्यान

उद्यद्भास्करं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागास्रजं,
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः ।
नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशु चूडोज्ज्वलम्,
वन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावये ।।

तामसिक ध्यान

ध्यायेन्नीलकान्तिं शशिकलधरं मुण्डमालं महेशम्,
दिग्वस्त्रं पिङ्गलाक्षं डमरुमथसृणिं खड्गशूलाभयानि ।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्विभ्रतं भीमदंष्ट्रम्,
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयबिलसत् किङ्किणीनूपुराढ्यम् ।।

शिशु बाधा निवारण भैरव मन्त्र—प्रायः जन्म से लेकर पाँच वर्ष की आयु तक शिशुओं को अनेक रोग लगा करते हैं। ऐसे बालकों को जितने भी प्रकार के रोग, दोष, टोटका, टोना लगते हैं। उन सब का निवारण नीचे लिखे सिद्ध भैरव-मन्त्र से होता हैं।

मन्त्र—ॐ भैरवाय वं वं वं ह्रां क्ष्रौं नमः

विधि—रोग, दोष, टोना, टोटका से पीड़ित बच्चे की माँ के बाएँ पैर के अंगूठे को एक ताम्रपात्र नीचे रखकर जल से धो लेना चाहिए। फिर उस जल को उक्त मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर मन्त्र को पढ़ते हुए पान के पत्ते से जल को बालक पर छिड़कता जाए। सामान्यतया एक ही बार के प्रयोग में बालक स्वस्थ हो जाते हैं। यदि कठिन बाधा हो तो ३ दिन, ७ दिन या ९ दिन तक लगातार प्रयोग करना चाहिए।

यदि बालक की माता न हो तो पिता के अंगूठे को धोना चाहिए और पिता भी न हो तो साधक स्वयं अपना अंगूठा धोकर मन्त्र से अभिमन्त्रित करे।

यक्ष और यक्षिणी-साधना

मञ्जुघोष यक्ष की साधना—मञ्जुघोष यक्ष के मन्त्र की साधना से साधक की मेधाशक्ति, स्मृतिशक्ति, संकल्पशक्ति और विवेकशक्ति बढ़ती है। स्नायुदौर्वल्य, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिभ्रंश, मानसिक असंतुलन आदि रोग, दोष दूर होते हैं। सुख, सौभाग्य, पद-प्रतिष्ठा की वृद्धि होती है। घी का दीपक जलाकर, मञ्जु घोष का ध्यानकर इस मन्त्र, का जप नित्य नियम पूर्वक ११०० जपते हुए १ लाख जप संख्या पूरी होने पर दशांश हवन करने से यक्ष-सिद्धि होती है। मञ्जुघोष साक्षात् प्रकट होकर अभीष्ट पूरा करते हैं।

मन्त्र

१. अ र ब च ल धीं

२. क्रों-ह्रीं श्रीं

द्वितीय प्रकार के मन्त्र की साधना करने से उच्चकोटि की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। त्रिकाल दर्शन की क्षमता प्राप्त होती है।

३. **ह्रीं श्रीं क्लीं**

तीसरे प्रकार का मन्त्र जैनमतावलम्वी साधना के अन्तार्गत है। यह बहुत गोपनीय और उपयोगी साधना मानी गई है। इस मन्त्र की साधना से साधक श्रुतधर और शतावधानी बनता है। वह एक ही साथ सौ प्रश्नों को सुनकर उन सब के उत्तर क्रमशः देने की क्षमता प्राप्त करता है और एक घड़ी में सौ श्लोक बनाने की क्षमता प्राप्त करता है।

घण्टाकर्ण यक्ष-साधना—घण्टाकर्ण यक्ष-साधना का जैन धर्म में अत्यधिक महत्त्व है। इसे जैनतांत्रिक बहुत ही गोपनीय मानते हैं।

मन्त्र

१. ॐ ह्रीं श्रीं घण्ठाकर्ण नमोऽस्तुते ठः ठः स्वाहा

साधना-विधि—१. भोजपत्र या ताम्रपत्र में लाल चन्दन से अष्ट-दल कमल बनाकर घण्टाकर्ण के मूलमन्त्र के अक्षरों को क्रम से कमल के दलों में लिखे। आठ अक्षर लिखने के बाद मन्त्र के जो अक्षर शेष रह जाएँ उन्हें कमल के दलों के शेष स्थानों पर लिख दिया जाए। मन्त्र-लिखित भोजपत्र या ताम्रपत्र पर ताँबे के दीपक में ऊर्ध्वबत्ती का घृत-दीप जलाकर यन्त्र का पूजन पंचोपचार से करे। तदनन्तर मूलमन्त्र का जप ११ हजार प्रतिदिन नियमपूर्वक ब्राह्म मुहुर्त्त में करे। सवा लक्ष जप पूरा होने पर दशांश हवन किया जाए। मन्त्र सिद्ध हो जाता है। फिर प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र को जपते रहना चाहिए।

२. जमीन पर गड़े हुए धन का अथवा दीवार में चुने हुन धन का पता लगाने के लिए घण्टाकर्ण के उक्त मूलमन्त्र का उपर्युक्त विधि से रात बारह बजे से प्रतिदिन १००८ जप किया जाए तो निश्चय ही दस दिन के अन्दर यक्ष प्रकट होकर निधि का स्थान बतला देता है। यक्ष द्वारा दिए गए निर्देश का पालन यथावत् करना आवश्यक है।

३. इस मन्त्र की साधना जब तक की जाए, तब तब साधक शौचा-चार, संयम पूर्वक रहे। केवल एक समय खीर का भोजन करे।

इस मन्त्र को दीपावली, सूर्य ग्रहण, या चन्द्रग्रहण में यदि ११००० जप करके सिद्ध कर लिया जाए तो वहुत आसानी से सिद्धि प्राप्त होती है।

२. **सर्वसिद्धि प्रद घण्टाकर्ण मंत्र**—घण्टाकर्ण का यह मन्त्र सभी प्रकार के कार्यों, कामनाओं को पूर्ति करता है। दीपावली या सूर्यग्रहण, चन्द्र-ग्रहण में इस मन्त्र को सिद्ध करना चाहिए। एक चौरस ताम्रपत्र या भोजपत्र में सोलह पंखुड़ियों वाला कमल पुष्प बना कर प्रत्येक पंखुड़ी

में निम्नांकित मन्त्र का प्रत्येक अक्षर अनार की कलम और अष्टगंध से लिखें।

ॐ ह्रीं श्रीं घण्टाकर्ण महावीर सर्वव्याधि नाशक ठः ठः ठः स्वाहा लिखने के बाद इस इस मन्त्र को पढ़ते हुए षोड़शोपचार से यन्त्र का पूजन कर यक्षराज का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।
सेवितो यक्ष कन्याभिर्वेष्टितश्चन्द्रशेखरः ।।
(एवं ध्यात्वा महावीरं जपेद् रुद्र सहस्रकम्।
पायसान्नेन जुहुयाद् गुग्गुलेन घृतेनवा) ।।

ध्यान के बाद मूलमन्त्र का जप ११००० किया जाए। जप समाप्त होने पर गूगुल और घी से अथवा गाय के दूध से बनी खीर से ११० बार हवन करे। विधिवत् संयम, नियम पूर्वक साधना करने से मन्त्र एक ही दिन में सिद्ध हो जाता है, किन्तु प्रत्येक दीपावली, सूर्यग्रहण, चद्रग्रहण में मन्त्र को जाग्रत करते रहना चाहिए।

हवन जप समाप्त होने पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए निम्नांकित प्रार्थना करनी चाहिए—

ॐ ह्रीं घण्टाकर्ण महावीर सर्वव्याधिविनाशक ।
विस्फोटकभये प्राप्ते रक्ष रक्ष महाबल ।
यत्र त्वं तिष्ठसे देव लिखितोऽक्षर पंक्तिभिः ।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति वातपित्त कफोदभवाः ।
तत्रराजभयं नास्ति याति कर्णजपात् क्षयम् ।
शाकिनी भूतवेतालराक्षसाः प्रभवन्ति न ।
नाकाले मरणं तस्य न च सर्पेण दंश्यते ।
अग्नि चोरभयं नास्ति ॐ ह्रीं श्रीं घण्टाकर्ण नमोऽस्तुते
ठः ठः ठः स्वाहा ।।

विभिन्न प्रयोग

१. किसी प्रकार की आधि-व्याधि से ग्रस्त रोगी हो तो घण्टाकर्ण मन्त्र को अष्टगंध और अनार की कलम से भोजपत्र पर लिखकर ताँबे के तावीज में भर कर मूलमन्त्र से १०८ बार हवन करके उस तावीज को पहना देने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

२. ताम्रपत्र पर मन्त्र को अंकित करा कर, उसकी प्राणप्रतिष्ठा और अभिषेक कर घर पर ताम्रयंत्र रखने से रोग, दोष, भय, संकट आदि कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

३. मामला, मुकदमा जीतने के लिए, फाँसी की सजा से मुक्ति पाने के लिए इस मन्त्र का यंत्र बनवाकर धारण करना चाहिए।

४. इस मन्त्र से भूत-प्रेत-पिशाच बाधाग्रस्त व्यक्ति को कुश और अपामार्ग से अभिसेचन करने से प्रेतादि बाधा दूर होती है।

५. इस मन्त्र से सर्पविष तुरन्त दूर होता है।

६. पशुओं के रोग को दूर करने के लिए इस मन्त्र से सात बार झाड़ा देने मात्र से पशु नीरोग होते हैं।

७. कुत्ता काटने पर मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियाँ बना कर सात बार 'ठः ठः ठः स्वाहा' पढ़ते हुए गोलियों से झाड़ने से कुत्ते का विष दूर होता है। कुत्ते के काटने पर विष में कुत्ते के रोम पैदा हो जाते हैं। वे रोम झड़ते समय मिट्टी की गोलियों में आकर समा जाते हैं। ९ रोएँ होते हैं। जब तक नौ रोएँ न दिखाई पड़ें, झाड़ते रहना चाहिए।

सुरसुन्दरी यक्षिणी-साधना

मूलमन्त्र—ॐ आगच्छ सुरसुन्दरी ह्लीं ह्लौं स्वाहा ।

साधना विधि—ब्रह्ममुहुर्त्त में शुद्ध, एकान्त स्थान में बैठ कर सन्ध्यादि नित्य कर्म करके 'ॐ ह्लौं' इस बीज मन्त्र को पढ़ते हुए तीन

बार आचमन करे, और ॐ सहस्त्रार हुँ फट्' पढ़ कर अपने चारों ओर सरसों फेंक कर दिग्वन्ध कराले, फिर उपर्युक्त मूलमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे इसके बाद 'ॐ ह्रां' अंगुष्ठाभ्यां नमः आदि क्रम से करन्यास करे।

करन्यास, अंगन्यास करने के बाद अनार की कलम और लाल चन्दन से चौरस ताम्रपत्र पर अष्टदल कमल बनाकर प्रत्येक दल पर मूल मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को लिखे। जो अक्षर शेष रह जाएँ उन्हें कमल दलों के मध्य में लिखे। तत्पश्चात् यक्षिणी का ध्यान करे—

पीठदेवीं समावाह्य, ध्यायेद्‌देवीं जगत्प्रियाम्।
पूर्णचन्द्रनिभां गौरीं, विचित्रावरण धारिणीम्॥
पीनोत्तुंग चन्द्रनिभां गौरीं, सर्वकामार्थ सिद्धये।

तत्पश्चात् वेदिका में स्थित ताम्रपत्र पर अधिष्ठित सुरसुन्दरी का षोडशोपचार पूजन मूलमन्त्र पढ़ते हुए किया जाए।

तदनन्तर मूलमन्त्र का जप लाल चन्दन की माला से ११०० किया जाए। इस तरह पूजन, आवाहन, ध्यान और जप आदि ३१ दिन तक करने से यक्षिणी प्रकट हो कर अभीष्ट सिद्ध करती है। ३१ दिन का अनुष्ठान पूरा होने पर दशांश हवन, तर्पण अवश्य किया जाए।

कर्णपिशाचिनी साधना

मूलमन्त्र—ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वं मे कर्णे कथय कथय
क्लीं ह्रीं श्रीं स्वाहा।

साधना विधि—कृष्णपक्ष की अष्टमी से इस साधना को प्रारम्भ करना चाहिए। पवित्र नितान्त एकान्त स्थान पर लाल वस्त्र पहन कर लाल रेशमी वस्त्र के आसन पर बैठ कर सरसों के तेल का दीपक जला कर उक्त मन्त्र का जप ४००० प्रतिदिन ३१ दिनों तक किया जाए। प्रतिदिन रात बारह बजे से साधना में बैठना अनिवार्य है।

जप करते समय नया मोर पंख पास रख लेना चाहिए। प्रतिदिन जप समाप्त होने पर मोरपंख की जड़ को दीपक के तेल में डुबोकर सात बार अपने दोनों पैरों पर तेल लगाना चाहिए।

३१ दिन तक साधना पूरी होने पर कर्णपिशाचिनी सिद्ध हो जाती है। सिद्ध होने पर भूत, भविष्य, वर्तमान की कोई बात पूछने पर वह कान में उत्तर दिया करती है।

सूर्य-साधना-मन्त्र

रोग-दोष-संकट नाशक मन्त्र

१. ॐ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय सूर्याय स्वाहा
२. ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः
३. ॐ ह्रीं ग्रहाधिराजाय आदित्याय ह्रीं ह्रीं ॐ
४. ॐ ह्रीं जूं सः माम् पालय पालय।

विधि

इन चारों मन्त्रों की विधि समान है। ताँबे की एक तश्तरी के तल-पट पर रोली या लाल चन्दन से वृत्त बनाकर उस वृत्त के अन्दर कुश से ह्रीं लिखे। इसके बाद ताँबे के पात्र में जल, तिल, लाल फूल डाल कर पूर्व की ओर मुंह करके सूर्य को अर्घ्य देते हुए उक्त मन्त्र में से किसी एक को पढ़ता रहे। जलधारा तश्तरी में लिखे हुए ह्रीं के ऊपर गिरती रहें। जलधारा धीरे-धीरे गिरती रहे किन्तु धारा टूटने न पाए और मंत्र पढ़ते हुए दृष्टि जलधारा की ओर रहे।

अर्घ्य देने के बाद वहीं बैठ कर उसी मन्त्र का यथशक्ति जप करके सूर्य को प्रणाम करना चाहिए।

यह प्रयोग रविवार से प्रारम्भ करना चाहिए।

इससे गलितकुष्ट, श्वेतकुष्ट, समस्त चर्मविकार, चक्षुविकार,

अंग पीड़ा आदि सभी प्रकार के असाध्य से असाध्य रोग ५१ दिन में दूर होते हैं। इस प्रयोग से किसी भी ग्रह का अरिष्ट निवृत्त होता है।

अभ्युदय मन्त्र

कर्मजव्याधि, क्षेत्रीय रोग, महाव्याधि नाशक यह सूर्यमन्त्र दुःख-दारिद्रय को दूर कर सौभाग्य, सुख, शान्ति प्रदान करता है।

मन्त्र—ॐ ह्र हां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्र।

इस मन्त्र को सूर्योदय के समय स्नान करके पूर्व की ओर मुंह करके खड़े होकर या बैठकर जपने मात्र से भाग्योदय है। रविवार का व्रत आवश्यक है।

सुख-सौभाग्य वर्द्धक मन्त्र

१. ॐ ह्रीं घृणिः सूर्यः आदित्यः क्लीं ॐ।

प्रातःकाल वज्रासन में बैठकर अनन्त प्रकाश के महासमुद्र का ध्यान करते हुए इस मन्त्र का जप करने से सुख-सौभाग्य की अमित वृद्धि होती है।

२. ॐ ह्रीं श्रीं आं ग्रहाधिराजाय आदित्याय सूर्याय स्वाहा।

इस मन्त्र से उपर्युक्त विधि से ताम्रपात्र पर सूर्यार्घ्य देकर जप करना चाहिए।

६ | शाबरमन्त्र-साधना

शाबरमन्त्र लोक-संस्कृति द्वारा उत्पन्न हुए हैं। इनका केन्द्र गढ़वाल, नेपाल और कामरूप तथा कामाक्षा है। जन-जातियों से लेकर सिद्ध महापुरुषों तक शाबरमन्त्र का प्रयोग किया करते हैं। शाबरमंत्र की भाँति शाबरतन्त्र (टोटका) भी सर्वत्र आसेतु हिमालय में प्रचलित हैं।

शाबरमन्त्रों की सबसे बड़ी विशेषता है, इनकी सरलता और उच्चारण ध्वनि। विना पढ़े-लिखे लोग भी इनकी साधना कर महत्त्वपूर्ण तांत्रिक प्रयोग किया करते हैं। जिस प्रकार तन्त्रशास्त्र के मन्त्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाये हुए हैं, वैसे ही शाबरमन्त्र भी जीवन के हर प्रयोजन और कार्य के लिए अपना अस्तित्व और महत्त्व बनाए हुए हैं। इन्हें सिद्ध करने में अंगन्यास, करन्यास, आसन, मुद्रा आदि का कोई बखेड़ा नहीं रहता है। जहाँ भी चाहे बैठकर रात में या दिन में मंगलवार को अथवा दीपावली, देवोत्थान एकादशी, सूर्य-चन्द्रग्रहण में १०८

बार हवन कर शाबरमन्त्र सिद्ध किए जा सकते हैं। हाँ, प्रतिवर्ष इन्हीं पर्वों में हवन करके फिर जप करके इन्हें जगाना अवश्य चाहिए।

शाबरमन्त्र जैसे लिखे हों, वैसे ही उन्हें पढ़ना चाहिए, भाषा, विराम, ध्वनि आदि में संशोधन नहीं करना चाहिए। प्रत्येक शाबर-मन्त्र स्वतः सिद्ध होते हैं।

सिद्ध शाबरमन्त्र

१. ॐ नमो बनें बिआई वनरी, जहाँ-जहीं हनुवन्त।
आँख पीड़ा कषावरि गिहिया, थनै लाइ चरिउ जाइ।
भस्मन्तन गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

मंगलवार या दीपावली, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में इस मन्त्र से १०८ बार हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। प्रतिवर्ष इन्हीं पर्वों में मन्त्र जाग्रत कर लेना चाहिए।

(क) इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रातःकाल सात बार आँखों पर हाथ फेरते हुए मन्त्र की फूंक देने से नेत्र के सभी रोग, विकार दूर होते हैं।

(ख) रविवार को चिचिड़ा उखाड़ कर ले आए, जिस व्यक्ति को करखौरी, बद, बाघी या थनों में थनैला हो, उसके उस अंग पर चिचिड़ा को फेरते हुए २१ बार मन्त्र पढ़ना चाहिए। तीन दिन में ये रोग दूर हो जाते हैं।

२. वनरागाँठि वानरी तो डाँटे हनुमान कंठ।
बिलारी बाघी, थनैली कर्णमूल सम जाइ।
श्रीरामचन्द्र की वानी पानी पथ होइ जाइ।

इस मन्त्र को उपर्युक्त विधि से सिद्ध करके जिस व्यक्ति के बाघी, बिलारी (आँख की गुहेरी), थनैली (स्तन का फोड़ा), कर्णमूल (कान की लहर के नीचे फोड़ा) हो; उसे मन्त्र पढ़ते हुए भस्म से झाड़ा जाए। मन्त्र पढ़कर भस्म की फूंक फोड़े पर छोड़ी जाए। तुरन्त आराम होता है।

३. (क) कारो बिछ्रिया कंगन हारो हरी सोंठ सोने को नारो ।
मारो डंक फाटिगै देह विष बिखरो सारी देह ।
उतर-उतर बिछिया राजा रामचन्द्र की दुहाई ।।

(ख) परबत पर सुरही गाइ कारी गाइ की चमरी पूछी
तेकरे गोबरे बिछी बिछाइ बिछी तोरे कर अठारह जाति ।
छ कारी छ पीअरी छ भूमाधारी · छ रत्नपवारी ।।
छ कुं हुं कुं हुं छारि उतरु बिछी हाड़-हाड़ पोर पोर ते
कसमारे लीलकंठ गरमोर महादेव की दुहाई
गौरा पार्वती की दुहाई अनीत टेहरी · शहार बन छाइ
उतर्हि बीछी हनुमन्त की आज्ञा दुहाई हनुमन्त की ।।

ये दोनों मन्त्र बिच्छू का विष उतारने के लिए हैं। इन्हें पूर्ववत् सिद्ध कर ले। जिसे बिच्छू ने डंक मारा हो, उसके उस अंग पर ऊपर से नीचे चिचिड़ा या मदार (आक) की जड़ फेरते हुए मंत्र पढ़ना चाहिए। पाँच मिनट में विष उतर जाता है।

४. ॐ गेरिठः ।

चूहा काटने पर इस मन्त्र से भस्म फूंक कर झाड़ने से चूहा का विष उतर जाता है।

५. ॐ ह्रां ह्रीं ह्र ॐ स्वाहा ॐ गरुड़ सं हुं फट् ।

इस मन्त्र से भस्म फूंककर मकड़ी, मकोड़ों के विष को दूर किया जाता है।

६. ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हुं फट् स्वाहा

इस मन्त्र से भस्म फूंक कर झाड़ने से सब प्रकार के कीड़ों का विष दूर होता है।

सर्प को भगाने के लिए

ॐ नमो आदेश गुरु को जैसे के लेहु रामचन्द्र
कबूत ओसई करहु राध विनि कबूत पवनपूत हनुमंत
धाव हन-हन रावन कूट मिरावन श्रवइ अण्ड खेतहि श्रवइ
अण्ड-अण्ड विहण्ड खेतहि श्रवइ वाजं गर्भ हि श्रवइ स्त्री
चीलहि श्रावइ शाप हर-हर जंबीर हर जंबीर हर-हर-हर

प्रयोग—(क) जहाँ कहीं से साँप को निकालना हो, मिट्टी के एक ढेले को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस स्थान या बिल के द्वार पर रख देने से साँप निकल जाता है।

(ख) जिस व्यक्ति के अण्डकोष बढ़े हुए हों उसे इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिलाने से अण्डकोश वृद्धि दूर हो जाती है अथवा अण्डकोश पर मन्त्र पढ़ते हुए फूंक मारी जाए।

प्रेत बाधा दूर करने के लिए

बाँधो भूत जहाँ तु उपजो छाडो गिरे पर्वत चढ़ाइ
सर्ग दुहेली तु जभि झिलिमिलाहि हुंकारे हनुवन्त
पचारइ सीमा जारि-जारि भस्म करे जौं चापें सींउ

इस मन्त्र को पढ़ते हुए मोर पंख से झाड़ा जाए या इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल छिड़का जाए या इस मन्त्र से हवन किया जाए।

खेत-खलिहान से चूहा भगाने के लिए

पीत पीताम्बर मूशा गाँधी ले जाइहु हनुवन्त तु बाँधी
ए हनुवन्त लंका के राउ एहि कोणे पैसेहु एहि
कोणे जाऊ।

स्नान करके हल्दी की पाँच गाँठ और अक्षत को लेकर इस मन्त्र को पढ़ते हुए चूहों के स्थान में छोड़ दे। चूहे भाग जाएँगे।

बवासीर रोग दूर करने के लिए

ॐ काकाकता क्रोरी कर्त्ता ॐ करता से होय
यरसना दश ह्ंस प्रकटे खूनी बादी बवासीर न होय
मन्त्र जान के न बतावे द्वादश ब्रह्म हत्या का पाप होय
लाख जप करे तो उसके वश में न होय शब्द साँचा पिंड काँचा तो
हनुमान का मन्त्र साँचा फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

इस मन्त्र को यदि कोई एक लाख बार जप कर ले तो उसे जीवन भर बवासीर का रोग नहीं होता है। जिसे बवासीर हो उसे चाहिए रात में रखे हुए पानी को प्रातःकाल शौच के समय इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उसी पानी से आबदस्त ले। बवासीर दूर हो जाती है।

आत्मरक्षा के लिए

(क) ॐ नमो वज्र का कोठा जिसमें पिंड हमारा पैठा।

ईश्वर कुंजी ब्रह्म का ताला गेरे आठो याम का यती हनुवन्त रखवाला।

प्रयोग—प्राणों का भय, संकट, बाधा, उपस्थित होने पर इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण कर लेने से आत्मरक्षा होती है।

(ख) आगे दो झिलमिली पाछे दो नन्द
रक्षा सीताराम की रखवारे हनुमन्त
हनूमान हनुमन्ता आवत मूठ करो नौ खंडा
साँकर टोरो लोह की फारो बजुर केवाड़
अज्जर कीलें बज्जर कीलें ऐसे रोग हाथ से ढीलें
मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा

प्रयोग—कुछ दुष्ट प्रकृति के तांत्रिक लोग किसी पर घातक तांत्रिक प्रयोग किया करते हैं। लोक भाषा में इसे 'मूठ' मारना कहते हैं। ऐसे

प्रयोगों से व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती है या ऐसा रोग उत्पन्न हो जाता है कि वह घुल-घुल कर मर जाता है। ऐसी हालत में इस मन्त्र से झाड़ा देने पर मूठ का प्रभाव नहीं होता है ।

आकर्षण मंत्र

१. ॐ कं हां हूँ

इस मंत्र को ११०० बार दीपावली या ग्रहण में जप करके या हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिए। किसी प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति के पास जाते समय इस मंत्र का मन ही मन जप कर लेने से वह व्यक्ति जप करने वाले पर आकृष्ट होकर उसके मनोऽनुकूल काम करता है।

२. ॐ स्त्रीं स्त्रीं फट्

यह तारिणी आकर्षण शाबर मंत्र है। उपर्युक्त विधि से इसे सिद्ध कर लेने से जिसके सामने इसे मन ही मन जपे, वही आकर्षित और मोहित हो जाता है।

३. ॐ नं नां निं नीं नुं नूं नें नैं नों नौं नं नः (अमुकं) आकर्षय ह्रीं स्वाहा

यह मातृका शाबर मंत्र है। उपर्युक्त विधि से सिद्धकर लेने के बाद गूलर की ६ अंगुल लकड़ी की कील बनाकर उस कील के ऊपर जिस व्यक्ति को आकर्षित करना हो, गेरू से उसका नाम लिखकर कील को उक्त मंत्र से फूंक मार कर अभिमंत्रित कर ले और फिर मंत्र पढ़ते हुए अमुकं की जगह उस व्यक्ति का नाम लेकर कील को उस के मकान की दीवार में गाड़ दे तो वह आकर्षित और वशीभूत होता है।

४. कोई व्यक्ति भाग गया हो या परदेश जाकर लौटता न हो, अथवा दूर-दराज़ रहने वाले व्यक्ति से कोई कार्य-साधन करना हो तो काले धतूरे के पत्ते का रस और गोरोचन मिलाकर कनेर की जड़ की कलम से भोजपत्र पर नीचे लिखे हुए मंत्र के साथ उस व्यक्ति का नाम लिखे, जिसे बुलाना हो या वशीभूत करना हो। फिर उस भोजपत्र को जलती हुई कत्था की लकड़ी के अंगारे पर डाल देने से वह व्यक्ति कहीं भी होगा, अवश्य आ जाएगा।

मंत्र—ॐ नमः आदि पुरुषाय·········(जिसे बुलाना हो उसका नाम लिया जाय) आकर्षण कुरु-कुरु स्वाहा।

५. ॐ भ्रां भ्रां भ्रां ह्रां ह्रां ह्रां हैं हैं हैं

इस मंत्र को दीपावली या ग्रहण में ५००० बार जप करके या हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर जिसे वशीभूत करना हो, उसके नाम, रूप का ध्यान कर इस मंत्र का जप ५०० बार करने से वह निश्चित ही साधक के वश में हो जाता है।

६. यदि कोई स्त्री अपने पति या प्रेमी को वश में करना चाहे अथवा कोई पुरुष अपनी पत्नी या प्रेमिका को अपने वश में करना चाहे तो किसी भी दिन रात ११ बजे के बाद जल में काले तिल छोड़कर वह स्नान करे। स्नान के बाद वह पहले से बिछाये गए आसन पर सर्वथा नग्न होकर पश्चिम की ओर मुँह करके बैठ जाए तथा पहले से ही तैयार रखे हुए दीपक को जला दे फिर सामने रखे हुए कांस्यपात्र पर अनार की कलम और रोली से यह यंत्र बना दे—

ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं
ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं
ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं
ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं
ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं	ह्लीं

....

(यहाँ पर जिसे वश में करना हो उसका नाम लिख दे)

फिर उस कांस्यपात्र से दीपक को ढक दे। कांस्यपात्र बड़ा हो जिससे दीपक बुझे नहीं। तदनन्तर नीचे लिखे मंत्र की तीन मालाएँ फेरे—

ॐ क्लीं कामाय क्लीं कामिन्यै क्लीं

तीन माला जप पूरा हो जाने पर कांस्यपात्र को उठाकर उस पर जमे हुए काजल को अनामिका अंगुली से थोड़ा निकाल कर अपनी जीभ में लगा ले। फिर कांस्यपात्र में जमे हुए काजल पर नई सींक से उपर्युक्त यंत्र को बना दे और उस पात्र को फिर दीपक के ऊपर ढक दे तथा नीचे लिखे मंत्र की ११ मालाएँ फेरे।

मंत्र

ॐ नमः कालिकायै सर्वाकर्षिण्यै (जिसे वश में करना हो उसका नाम) आकर्षय आकर्षय शीघ्रमानय आनय ॐ ह्रीं क्रीं भद्र-काल्यै नमः ।

जप समाप्त होने पर कांस्यपात्र में जमे हुए काजल को निकाल कर किसी डिबिया में बंद कर रख ले । इस काजल को जरा सा निकाल कर पानी में या किसी खाने पीने के चीज में डाल कर जिसे पिला दिया जाए या खिला दिया जाए अथवा जरा-सा काजल उस व्यक्ति के पहने हुए वस्त्र में लगा दिया जाए ।तो वह तुरंत वश में हो जाएगा ।

यदि उस स्त्री या पुरुष से साक्षात्कार संभव न हो, जिसे वश में करना हो तो घर पर बैठ कर कांसे की कटोरी में थोड़ासा काजल डालकर उसमें मक्खन मिलाकर नीचे लिखे मंत्र को पढ़ते हुए मक्खन और काजल को मथा जाए । मथते-मथते ही वह व्यक्ति कहीं भी हो वश में हो जाता है ।

मंत्र—ॐ नमो यक्षिण्यै अमुकं (यहां पर उसका नाम ले जिसे वश में करना हो) मे वश्यं कुरु-कुरु स्वाहा ।

यह शाबरमंत्र अमोघ है, कभी विफल नहीं होता है ।

भूतरोगनिवारण-मंत्र

यह रोग प्रायः स्त्रियों को हुआ करता है । इस रोग को उत्पन्न करने वाले एक प्रकार के कीटाणु होते हैं, जो स्त्रियों को लग जाते हैं और रोगी की हालत प्रेतबाधाग्रस्त-सी हो जाती है । अनजानलोग भूत-प्रेतबाधा समझ कर प्रेतबाधा दूर करने का जो उपाय करते हैं, वह निष्फल होता है । यह रोग अधिकतर प्रसव की गड़बड़ी अथवा मासिक धर्म के विषाक्त हो जाने पर हुआ करता है । जिस स्त्री को यह रोग

लग जाता है, वह मूर्च्छित हो जाती है, अनाप-शनाप बकवास करती है। कभी हँसती है, कभी रोती है अथवा उसके शिर या पेट में भयंकर शूल उठता है। कभी-कभी पुरुषों को भी यह रोग लग जाता है।

ऐसे रोग से ग्रस्त रोगी को अपने सामने बैठा कर अथवा चारपाई पर लिटाकर नीचे लिखे शाबरमंत्र को पढ़ते हुए भस्म से फूँक मार कर झाड़ा देना चाहिए। अन्त में उसके हृदय और माथे में मंत्र पढ़कर भस्म लगा देनी चाहिए अथवा भस्म को अभिमंत्रित कर ताबीज में भर कर पहना दिया जाए।

मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा परबत हंस परबत स्वामी आत्म-रक्षा सदा भवेत् नौ नाथ चौरासी सिद्धया की दोहाई हाथ में भूत पाँव में भूत भभूत मेरा धारण माथे राखो अनाड की जोत सव को करो सिगार गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फुरोमंत्र ईश्वरो वाचा दोहाई भैरव के।

सर्वोपद्रवनिवारण-मंत्र

कुछ ज्ञात कुछ अज्ञात कारणों से किसी के घर में कलह, मन-मुटाव बना रहता है। घर की सुख-शान्ति चली जाती है, अथवा घर में ईंट, पत्थर, पाखाना बरसने लगता है, या अचानक आग लग जाती है; वस्तुएँ गायब हो जाती हैं। इस प्रकार के जितने उपद्रव हैं, उन सब को शान्त करने में यह मन्त्र बहुत शक्तिशाली है—

ॐ नमो आदेश गुरु का धरती में बैठ्या लोहे का पिंड़राख
लगाता गुरु गोरखनाथ आवन्ता जावन्ता धावन्ता हाँक
देत धार-धार मार-मार शब्द साँचा फुरो वाचा।

मृगचर्म पर बैठ कर इस मन्त्र से खीर की १०८ आहुतियाँ तीन दिन देने से सारे उपद्रवों का शमन होता है।

जादू, तंत्र, मंत्र के प्रभाव का निवारण-मंत्र

किसी पर किसी आदमी द्वारा जादू, टोना, टोटका या कृत्या का प्रयोग कर दिया जाए तो उसके प्रभाव को दूर करने के लिये नीचे लिखे शाबर मन्त्र को पढ़ कर धतूरे के बीजों से सात दिन तक १०८ आहुतियाँ नित्य देने से प्रभाव नष्ट हो जाता है।

मंत्र

ॐ आहूता मंदरश्म यजाज्वत्यं जम जम जम
ॐ गहि गाहि गाहि।

व्यापार-व्यवसायवर्द्धक-मंत्र

प्रायः देखा जाता है कि कोई आदमी अथक परिश्रम और पुरुषार्थ करता है किन्तु उसे हर काम में असफलता मिलती है। घर में छूत-सी लग जाती है। अभाव और संकट घेरे रहते हैं। रोज़ी-रोज़गार में घाटा लगता है। ऐसे लोगों को निम्नांकित शावरमन्त्र की साधना करनी चाहिए। २१ दिन के अन्दर ही लाभ होने लगता है, निरन्तर करते रहने से सुख, समृद्धि की वृद्धि होती है।

मंत्र

ॐ श्रीं श्रीं श्रीं परमाम् सिद्धि श्रीं श्रीं श्रीं

विधि—जिस दिन प्रदोष हो, उस दिन उपवास व्रत रखा जाए। केवल फलाहार किया जाए। नमक, अन्न का सेवन न किया जाए। संध्यासमय शिव जी का पूजन कर उक्त मन्त्र का जप तीन माला करे। इसके बाद अगर, तगर, केशर, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, देवदारु, कपूर, गूगुल में नगौरी असगंध के फूल और घी मिला कर इसी मन्त्र से १०८ आहुतियाँ दे। इस प्रकार सात प्रदोष तक यह उपासना करने से श्री-समृद्धिकी वृद्धिहोती है। आगे भी करता रहे तो ठीक है नहीं तो सात प्रदोष तक अवश्य किया जाए।

सिद्धमानस-मंत्र

श्रीरामचरितमानस मन्त्र-काव्य है। उसके हर दोहे-चौपाई मन्त्र का-सा प्रभाव रखते हैं। कुछ अनुभवसिद्ध दोहे-चौपाइयों के प्रयोग यहाँ दिए जा रहे हैं। इनकी साधना, उपासना कभी विफल नहीं होती है।

जिस किसी प्रयोजन के लिए भी साधनां की जाए उसकी साधना विधि एक ही है, मन्त्र विभिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न हैं। जिस किसी दिन सुविधा हो उसी दिन रात १० बजे के बाद शुद्ध, एकान्त स्थान में पूर्व की ओर मुँह करके कुशासन या ऊन के आसन पर बैठ जाए। सामने भगवान राम और हनुमान जी का चित्र या मूर्ति हो।

आचमन और प्रयोजन का संकल्प करके भगवान् काशी विश्वनाथ का ध्यान किया जाए। फिर भगवान् राम और हनुमान जी का ध्यान करके जिस प्रयोजन का जो मन्त्र हो उस से १०८ बार अष्टांगहवन-सामग्री से हवन किया जाए। हवन के बाद कार्य-सिद्धि के लिए प्रार्थना कर ली जाए। केवल प्रथम दिन ही एक बार हवन किया जाए, उसके बाद अभीष्ट मन्त्र चौपाई या दोहे का जप या कीर्तन अथवा स्मरण नित्य प्रातः और सायंकाल करते रहना चाहिए।

अष्टांगहवन-सामग्री

चन्दन का बुरादा, लालचन्दन का बुरादा, काले तिल, जौ, चावल, नागरमोथा, कपूर, गूगुल, केसर, पंचमेवा, शक्कर और घी।

आम या देवदारू की लकड़ी में अग्नि स्थापित कर हवन किया जाए।

प्रयोजनीय मानस-मंत्र

रक्षा-रेखा

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर शायक।

इस मन्त्र से रक्षारेखा खींच देने से शत्रु, हिंसक जीव, विषैले जीव, भूत-प्रेत की बाधा कहीं नहीं होती है।

विपत्ति-नाशक

राजिवनयन धरें धनुसायक। भगत विपति भंजन सुखदायक ॥

संकट-नाशक

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरतिहरन बेद जसु गावा ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
दीनदयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

कठिन क्लेश नाशक

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोहनिसिदलन दिनेसू ॥

विघ्न-विनाशक

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही ॥

खेद-नाशक

जबतें राम ब्याहि घर आए। नित नवमंगल मोद बधाये ॥

महामारी नाशक

जय रघुबंस बनिज वन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥

विविध रोगउपद्रव-नाशक

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

मस्तिष्करोग-नाशक

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥

विष-नाशक

नाम प्रभाव जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

अकालमृत्यु-निवारक

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥

भूत-प्रेतबाधा-नाशक

प्रनवउँ पवनकुमार, खल बन पावक ग्यानघन ।
जासु हृदयँ आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥

दृष्टिदूषण-नाशक

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहिं छवि जननीं तृन तोरी ॥

खोई हुई वस्तु प्राप्ति के लिए

गई बहोर गरीबनेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥

जीविका-प्राप्ति के लिए

बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥

दरिद्रता-नाशक

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद दवारिके ॥

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ ।धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ ॥

पुत्र-प्राप्ति के लिए

प्रेम मगन कौसल्या, निसिदिन जात न जान ।
सुत सनेह बस माता, बालचरित कर गान ॥

संपत्ति-प्राप्ति के लिए

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुखसंपति नाना विधि पावहिं ॥

ऋद्धि-सिद्धि-प्राप्ति के लिए

साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्धि अनिमादिक पाएँ ॥

सबसुख की प्राप्ति के लिए

सुनहिं विमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ।।

मनोरथ सिद्धि के लिए

भवभेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि ।।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसरारि ।।

कुशल क्षेम के लिए

भुवन चारिदस भरा उछाहू । जनकसुता रघुबीर बिआहू ।।

मुक़द्दमा जीतने के लिए

पवन तनय बल पवन समाना । बुध विवेक विग्यान निधाना ।।
रिपुरन जीति सुजसु सुरगावत । सीता सहित अनुज प्रभु आवत ।।

शत्रु का सामना करने के लिए

कर सारंग साजि कटि भाथा । अरिदल दलन चले रघुनाथा ।।

शत्रु को मित्र बनाने के लिए

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।।

शत्रुता नाश करने के लिए

बयरु न कर काहू सन कोई । रामप्रताप बिषमता खोई ।।

शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए

तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ।।

विवाह के लिए

तब जन पाइ बसिष्ठ आयसु, ब्याह साज सँवारिके ।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला, कुँवरि लाई हँकारिके ।।

यात्रा की सफलता के लिए

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ।।

परीक्षा में पास होने के लिए

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कविउर अजिर नचावहिं बानी ॥
मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपां अघाती ॥

आकर्षण के लिए

जेहिं के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू ॥

निंदा-निवृत्ति के लिए

राम कृपाँ अवरेब सुधारी । बिबुध धारि भई गुनद गोहारी ॥

विद्या-प्राप्ति के लिए

गुरु गृहँ पढ़न गये रघुराई । अलपकाल विद्या सब आई ॥

नित्य मंगलाचार होने के लिए

सिय रघुबीर विवाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु, मंगलायतन रामुजसु ॥

७ | आथर्वण-प्रयोग

अथर्ववेद में पदार्थविज्ञान, मनोविज्ञान, अक्षरविज्ञान, कर्मजव्याधि-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान के विषय और उनके प्रयोग आधियों, व्याधियों को दूर करने के लिए विशद रूप से लिखित हैं। आयुर्वेद विषयक ९ सूक्त, विविध ओषधि-भैषज्य विषयक २५ सूक्त, रोगादिनिवारण विषयक ३२ सूक्त, विष-नाशन विषयक—जिनमें विष, विषदूषण-निवारण सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रयोग हैं—७ सूक्त हैं। जितने प्रकार के कृमि, कीटाणु हैं और वे शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो विविध रोग-दोष उत्पन्न करते हैं, उनको दूर करने के विविध उपाय ३ सूक्तों में हैं। आसुरप्रभाव, कृत्यार-दूषण, प्रेत-पिशाचप्रभाव, दस्युपीड़ा, ईर्ष्या, अलक्ष्मी, आदि नाना प्रकार के जो अरिष्ट होते हैं, उन सब के निवारण के लिए उपाय और प्रयोग अथर्ववेद के १२ सूक्तों में बताए गए हैं। अथर्ववेद से ही [illegible]विद्या का प्रादुर्भाव हुआ है।

अथर्ववेद में उल्लिखित मन्त्र-विद्या का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वह पाँच प्रकार की होती है—

१. संकल्प, आवेश

२. अभिमर्श और मार्जन

३. आदेश

४. मणिबन्धन

५. कृत्या और अभिचार

१, दुःस्वप्न, दुरित, पाप, शाप और दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए 'संकल्प' अथवा आवेश मन्त्रों का प्रयोगकिया जाता है। इसका मन्त्र है—

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः

—६।४५।१

यह मन्त्र दुःस्वप्ननाशन सूक्त का पहला मन्त्र है । इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं । कायिक, वाचिक, मानसिक, पापजन्य व्याधियों को दूर करने के लिए रोगी के शिर पर हाथ रख कर उपर्युक्त मन्त्र अथवा सूक्त के तीनों मन्त्रों को पढ़ते हुए निर्विकार होने का संकल्पमात्र करने से रोगी व्याधिमुक्त हो जाता है ।

यदि कोई व्यक्ति निरन्तर श्रम-साधना करने पर भी अपने कार्य-व्यापार में असफल होता है, अथवा दुष्टों, धूर्तों द्वारा बना-बनाया काम बिगाड़ दिया जाता है तो सफलता प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद (६।४५।१) के निम्नांकित मन्त्र से संकल्प करके कार्य करने से निश्चय ही सफलता मिलती है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः

संकल्प-शक्ति द्वारा, शक्तिसंपात् द्वारा विविध प्रकार के रोगों का निवारण अथर्ववेद के केवल एक ही मन्त्र से सम्भव है—

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥
—२०।९६।२४

इस मन्त्र का दृढ़ संकल्पपूर्वक जप करने मात्र से सब प्रकार के रोग दूर होते हैं ।

जो व्यक्ति कायर, कुटिल, कामी, कमजोर और हीनभावना ग्रस्त हो, वह अपने को वर्चस्वी, तेजस्वी बनाने के लिए अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के २२वें सूक्त के छह मन्त्रों का जप करे । केवल २१ दिन के अन्दर ही उसे तेजस्विता का अनुभव होने लगेगा ।

२. अभिमर्श का तात्पर्य शरीर का संस्पर्श करना है । अभिमर्श करने से शरीरगत रोग दूर होते हैं । प्रेतबाधा, कृत्यादूषण, ग्रहदोष दूर होते हैं । अभिमर्श विद्या के मूल मन्त्र ये हैं—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचा पुरोगवी ॥
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि ॥
४।१३।६,७ ।

दोनों हाथों की दसों अंगुलियों से रोगी के सर्वांग शरीर को ऊपर से नीचे संस्पर्श कराते हुए उपर्युक्त मन्त्र जब पढ़ा जाता है तो रोगी के शरीर के अन्दर सनसनाहट पैदा होती है, रोमांच होता है, कम्पन होने लगता है और फिर वह स्वस्थ हो जाता है ।

हस्ताभिमर्श द्वारा शारीरिक, मानसिक रोग दूर करने की और भी विधियाँ हैं । जैसे—पुरश्चरण करना, चमरीगाय की पूंछ से, मोरपंख से झाड़ना, अपामार्ग और कुश से जलाभिसेचन करना, जल से छींटे देना ।

३. आदेश मन्त्रों का प्रयोग मानसिक विकार, मस्तिष्क विकार

दूर करने के लिए किया जाता है। आदेश को संवशीकरण भी कहा जाता है। भावना द्वारा विकार दूर करने की यह प्रक्रिया है।

मन्त्र

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥

७।१२।४

जो चंचल वृत्ति के व्यक्ति होते हैं, एक काम को छोड़कर दूसरा, तीसरा काम करने लगते हैं अथवा मन लगाकर काम नहीं करते हैं। बिना सोचे-समझे हानिकारक काम कर बैठते हैं, किसी का कहना नहीं मानते हैं, उद्दण्ड, लापरवाह, दुर्विनीत, असमीक्ष्यकारी, उन्मत्त, पागल व्यक्तियों पर इस मन्त्र का प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है। यह संवशीकरण है। और आदेश का मन्त्र यह है—

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मनि एत॥

३।८।६

रोगी को सम्बोधित करते हुए प्रयोक्ता उक्त मन्त्र पढ़ते हुए उसे यह आदेश दे। इस प्रकार मन्त्र द्वारा आदेश देते हुए प्रयोक्ता उन्मादी (पागल) उद्दण्ड, डाकू, हत्यारा, चिन्तातुर, आलसी, लापरवाह, ईर्ष्यालु व्यक्ति को जब अपना अनुगत बनाले, तब निम्नांकित मन्त्र का प्रयोग उस पर करे—

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि॥

६।१११।२

इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है—

आम की लकड़ी में आग प्रज्ज्वलित कर कर्पूर, चन्दन, तुलसी के

बीज से उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए १०८ आहुतियाँ दें। रोगी को सामने बैठा लिया जाए और हवन के बाद धुएँ से उसका अभिमर्शन करे तो रोगी तुरन्त ठीक हो जाता है।

आदेशविद्या के अनेकानेक मन्त्र अथर्ववेद में हैं। जीर्णज्वर, एकान्तरा, तिजारी, चौथिया, मन्थरज्वर, आंत्रिकज्वर, काला ज्वर, शीतज्वर, राजयक्ष्मा, स्नोफीलिया, स्नायुदौर्बल्य, लकवा हृदय-रोग आदि दूर करने के लिए अथर्ववेद (५।३०।८-६) के मन्त्रों का विधिवत् प्रयोग करे और उन्नतशीलजीवन, यशस्वीजीवन, पदोन्नति के लिए अथर्ववेद के ८।१।६ मन्त्रादेश का प्रयोग करना चाहिए।

४. **मणि-बन्धन** का प्रयोग युद्धादि विषयों में विजय प्राप्त करने तथा रोग, शोक, भय, ग्लानि के निवारण के लिए किया जाता है। अथर्ववेद (४।६), **अञ्जनमणि** (४।१०), शंखमणि, (१।२६), **अभीवर्तमणि**, (८।३), **प्रतिसरमणि** (१०।३), **वरणमणि**, (१६।३६), **शतवारमणि**, (२।११ और ८।५), **स्त्राक्यमणि**, और (१६।३१), **औदुम्बरमणि** आदि के मन्त्र-प्रयोग हैं।

इनमें शंखमणि (मोती) को छोड़ कर शेष वनस्पतियाँ है। वनस्पतियों की जड़, पत्तियाँ, पुष्प बीज आदि को बाँधा जाता है।

५. **कृत्यादूषण** और अभिचार कर्म के प्रभाव को दूर करने के लिए अथर्ववेद (१०।१।१-३२) के ३२ मन्त्रों द्वारा हवन, अनुष्ठान किया जाता है। कृत्यापरिहरण के लिए अथर्ववेद ५।१४ सूत्र के १३ मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। कृत्या और अभिचार कर्म का परिगणन अरिष्ट में किया जाता है।

मणि-बन्धन-प्रयोग

पूर्वजन्म और इस जन्म के कर्मों से उत्पन्न असाध्य रोगों को दूर

करने में तथा घर, परिवार में घटने वाली अद्‌भुत घटनाओं के निवारण के लिए और भूत-प्रेत आदि विविध-प्रकार के अरिष्टों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में उल्लिखित मणियों को बाँधने से तत्काल लाभ होता है। यहाँ कुछ मणियों के प्रयोग लिखे जाते हैं। अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा के मत से मणियाँ केवल रत्न की ही नहीं होती हैं अपितु वनस्पतियों से निर्मित, वनस्पतियों के रसों के पुट से सम्पुटित भेषज भी मणि कही गई हैं। इस प्रकार की मणियों का उल्लेख इस प्रकार है—

१. जङ्गिडमणि, २ शंखमणि, ३ प्रतिसरमणि, ४ अञ्जनमणि, ५ हरुर्मणि, ६ हरिणमणि, ७ दर्भमणि, ८ औदुम्बरमणि, ९ शतवरोमणि, १० अस्तृतमणि, ११ त्रिसन्ध्यमणि, १२ वरणमणि १३ स्राक्तमणि, १४ अभीवर्तमणि, १५ यवमणि, १६ अर्कमणि, १७ खदिरमणि, १८ फालमणि, १९ लोममणि, २० पाठामूलमणि, २१ गोदामणि, २२ आयमगनपर्णमणि और २३ तलाशमणि।

प्रयोगविधि—जिस प्रयोजन के लिए जो मणि बाँधनी हो, उसका अथर्ववेद के उस मणि से संदर्भित मन्त्र से विनियोग करके तत्सम्बन्धी सूत्र से कुश, अपामार्ग से जलाभिसेचन द्वारा अभिमंत्रित कर लालरेशम के कपड़े में बाँध कर अथवा सोने के ताबीज में भर कर बाँध देने से तत्काल लाभ होता है। जैसे कृत्यादोष (किसी व्यक्ति पर उसके अभ्युदय को क्षीण करने के लिए कृत्या का प्रयोग) किसी द्वारा के किए जाने पर जङ्गिड़मणि बाँधने में कृत्या का दोष दूर होता है।

१—जङ्गिड़मणि-जङ्गिड़ की पहचान अर्जुन वृक्ष से की गई है। अर्जुन वृक्ष की जड़ को विनियोगपूर्वक अथर्ववेद काण्ड २।४ **'दीर्घायुत्वाय' 'जङ्गिडोऽसि'** काण्ड १९।३४ के **इन्द्रस्यनाम** तथा काण्ड १९।३५ के सूक्तों से अभिमंत्रित मणि पहना देने से कृत्यादोष, अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि) जन्य विकार, प्रेतपिशाचजन्य प्रभाव, क्रूर-

दृष्टि (नजर, टोना) नैर्ऋतिदोष, महाव्याधियाँ राजयक्ष्मा, भगंदर आदि, सब प्रकार के पीडाजनक रोग, उत्पात, कैन्सर, गण्डमाला, दुष्ट व्रण आदि समस्त रोगदोष, पाप-शाप मणि बाँधने से दूर होते हैं।

२—**तलाशमणि**—इसकी पहचान वृहत्पलाश से की गई है। वृहत्प लाश एक विशेष प्रकार का पीपल का वृक्ष है जो हिमालय की तराई में बहुत होता है। गूलर के फल के समान इसके फ़ल होते हैं।

प्रयोग—वृहत्पलाश के पत्तों का रस गर्भधारण के तीन महीना बाद विनियोग पूर्वक अथर्ववेद के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर गर्भिणी को पिला देने से सुन्दर, स्वस्थ, मेधावी पुत्र का जन्म होता है और यदि कोई स्त्री बन्ध्या हो तो उसे पलाश पीपल की जड़ अभिमन्त्रित कर बाँधने से वह निश्चय ही पुत्रवती होती है। इस प्रयोग के विनियोग और मन्त्र इस प्रकार हैं—

विनियोग—अस्य आथर्वण मन्त्रस्य उद्दालक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, वनस्पतिः देवता तलाशमणि धारणे विनियोगः।

अभिमन्त्रणमन्त्र

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१॥
सबन्धुश्चासबन्धुश्चयो अस्माँ अभिदासति।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२॥
यथासोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३॥

३ **यवमणि**—कैसी भी जड़ता, बुद्धिहीनता, मस्तिष्क विकार हो वह यवमणि के प्रयोग से दूर होकर स्मृतिशक्ति; मेधाशक्ति बढ़ाकर परम-मेधावी बनाती है। यवमणि कीं पहचान इन्द्रजौ बूटी से की गई है।

प्रयोग—इन्द्र जौ कीं जड़ लेकर पहले यह विनियोग किया जाए।

अस्य मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः वायुदेवता, अनुष्टुप् छन्दः यवमणि धारणे अनुमन्त्रणे च विनियोगः

अभिमन्त्रणमन्त्र

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसायव।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वां दिव्याशनिर्वधीत् ॥१॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२॥
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वाक्षिताः ॥३॥

४. फालमणि—फाल की पहचान हल में लगने वाले फाल की नोक से की गई है। फालमणि धारण करने से धन-धान्य, श्री, वर्चस्व की वृद्धि होती है। व्यापार-व्यवसाय, कृषि गो-पशु संवर्द्धन होता है, देश-देशान्तर में भ्रमण से लाभ होता है। तथा यह मणि सर्वरोग हर है। नपुन्सकता को दूर करने में यह अमोघ सिद्ध हुआ है।

विनियोग—अस्य फालमणेः अथर्वा ऋषि, सोमदेवता पुरोऽनुष्टुप्छन्दः फालमणि अनुमन्त्रणे अवधारणे विनियोगः

विनियोग के बाद फाल की नोक को कुश अपामार्ग से जल द्वारा अथर्ववेद के काण्ड १० सूक्त ६ की ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर बाँधना चाहिए।

विशेष—कुछ आचार्य फाल को खदिर (कत्था) मानते हैं, उनके मत से खदिर के टुकड़ों को पानी में स्वर्ण के साथ डालकर उबाल लिया जाए। उबलते-उबलते जब गाढ़ा काढ़ा बन जाए तो उसे छानकर घी डालकर पकाले फिर उतार कर उसमें मधु मिलाकर उसकी मटर बराबर गोलियाँ बनाकर उपर्युक्त विनियोग और अभिमन्त्रण कर

सेवन करने से इन्द्रियजन्य विकार दूर होकर स्फूर्ति, नव यौवन बल-वीर्य और ओज बढ़ता है।

५. वरणमणि—वरण को भाष्यकार दारिल-केशव 'वरणो विल्वः' कहकर विल्व (बेल के वृक्ष) वृक्ष से पहचान बतलाते हैं। 'वरण' एक प्रकार का विल्वही है किन्तु सामान्यतया प्रसिद्ध और व्याप्त बेल वृक्ष से सर्वथा भिन्न है। वरण वृक्ष कश्मीर में शिवपुर छावनी से आगे टिक्कड़ गाँव में स्थित भगवती रागना देवी के मन्दिर के आस-पास काफी मात्रा में है। रागना देवी का मन्दिर पहाड़ पर है। उस पहाड़ में वरण वृक्ष अधिकाधिक पाए जाते हैं। वहाँ के निवासी उसे वरण—बरन ही कहते हैं।

वरण वृक्ष के पुष्प अभिमन्त्रित करके उन्निद्र रोगी के सिरहाने में रखे जाएँ तो तुरन्त गहरी नींद आती है। दस वर्ष से एक मिनट भी न सोने वाले व्यक्ति पर इसका अनुभव किया गया तो उसका उन्निद्र रोग एक ही दिन में चला गया। वरण वृक्ष के पुष्प अभिमन्त्रित कर चारपाई के सिरहाने में बाँध देने से दुःस्वप्न दूर हो जाते हैं।

अभिमंत्रित वरणबृक्ष की छाल और जड़ श्वेत कुष्ट, गलित कुष्टको दूर कर नया जीवन प्रदान करती है। मस्तिष्क विकार, और पागलपन को भी यह मणि दूर करती है। गले में मणि धारण करने से मेधा शक्ति, स्मरण शक्ति बढ़ती है। एकमुखीरुद्राक्ष और वरण वृक्ष के फलों के बीज को सीसा, लोहा और सोने के तारों में १०१ बार मढ़कर (लपेट कर) बीज के छिद्र को सोने से मढ़कर विनियोग पूर्वक मंत्र से अभिमंत्रित दाहिनी भुजा में धारण करने से भी विजय-विभूति प्राप्त होती है और दीर्घायुष्य, आरोग्य की वृद्धि होती है।

वरणमणि धारण करने से स्त्रियों को सौतों (सपत्नी) का भय नहीं रह जाता। यह मणि शत्रुओं का दमन करती है, मारण-मोहन-उच्चाटन,

कीलन, विद्वेषण, आदि अभिचारों से रक्षा करती है। राजयक्ष्मा वशीकरण दु:स्वप्न, नैर्ऋतिदोष का शामन करती है। अपमृत्यु का निवारण करती है। जिस स्त्री को रजोधर्म न होता हो, वह इसे धारण कर रजोवती बनती है। सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जीवों से तथा सर्प आदि सरी सृपों के विष से रक्षा करती है।

विनियोग—अस्य वरणमणेर्मंत्रस्य वृहस्पतिर्ऋषिः आपोदेवता वनस्पतिः शक्तिः अनुष्टुपछन्दः सप्तपदा विराट् शक्वरी, त्र्यवसाना अष्टपदा शक्वरी; त्र्यवसाना षट्पदा जगती, पञ्चपदा अनुष्टुपगर्भा जगती सकलाभीष्ट सिद्धर्थे अभिसेचने विनियोगः।

अभिमंत्रण—अथर्ववेद काण्ड १० सूक्त ३ के ३५ मंत्रों से कुश, अपामार्ग से अभिसेचना कर वरणमणि धारण करना चाहिए।

६. **शतवारोमणि**—शतवार की पहचान शतावर से की गई है। शतवार मणि शक्तिवर्द्धक, वीर्यस्तभनकारी, गर्भपुष्टिकर, बहुदुग्धप्रद, ओज-तेज-वर्चस्ववर्द्धक और कुलक्षय दोष निवारक है। शतवार के अग्रभाग की मणि धारण करने से भूतप्रेत, पिशाच, राक्षस आदि का भय, प्रकोप दूर होता है। मध्यभाग की मणि धारण करने से समस्त चर्म रोग, फेफड़ों और यकृत के रोगा दूर होते हैं और मूल भाग की मणि धारण करने से नासूर, भगन्दर, बाघी, कर्णमूल, कारबंकल, अर्श, अपस्मार, मृगी-मूर्च्छा आदि रोग दूर होते हैं।

विनियोग—अस्य शतवारो मणि मंत्रस्य शतवारःऋषिः, अनुष्टुप छन्दः शतवारमणिम् अनुमंत्रणे विनियोगः।

अभिमंत्रण—कुश-अपामार्ग से जल द्वारा अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ६ के ६ मंत्रों से, काण्ड १ सूक्त ४ के ४ मंत्रों से और काण्ड १ सूक्त ३ के ३ मंत्रों से अभिमंत्रित कर शतवार मणि दक्षिण बाहु मूल में धारण करनी चाहिए।

दर्भमणि—दर्भमणि एक प्रकार का कुश है, जो अधिकतर हरि-द्वार में पैदा होता है। इसे हरिद्वारी कुश भी कहते हैं। दर्भमणि भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कृत्यादोष, अभिचार कर्म, पाप-शाप के दोषों, प्रकोपों के निवारण करने में सर्वश्रेष्ठ और अमोघ सिद्ध है। इस मणि के लगभग १०० प्रकार के प्रयोग हैं। आधिदैबिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के रोगों दोषों को यह मणि दूर करती है।

१—शान्तिकल्प में बताए गए 'याम्यी' शान्ति में इसके विभिन्न प्रयोजनों के विभिन्न प्रयोग हैं और विनियोगों के बाद अथर्ववेद के काण्ड ६ सूक्त २८, २९, ३० तथा ३२, ३३ एवं सूक्त २७ से अभिमंत्रित कर मणि धारण करने से एक सौ प्रकार के मृत्युभय से निवारण होता है।

दर्भमणि का एक ऐसा प्रयोग है, जो मृतक श्राद्ध को बकवास मानते हैं, उनको इस चुनौती का प्रत्यक्ष प्रमाण दर्भमणि द्वारा दिया जा सकता है। प्रायः ऐसा होता है कि किसी के घर का कोई प्राणी मर कर प्रेत बनकर या असंतुष्ट पितर बनकर घर की शान्ति, सुख, समृद्धि को विनष्ट करता रहता है। उसे प्रत्यक्ष करने के लिए अथर्ववेद श्राद्ध का विधान दर्भमणि द्वारा बतलाता है। विधि यह है—

श्मशान भूमि से चिता की अधजली लकड़ी या जली हुई लकड़ी का कोयला लाकर उस कोयले में अथर्ववेद के काण्ड ५ सूक्त ३० के 'ऐतु प्राण ऐतु मन' इत्यादि १३, १४, १५ मन्त्रों से मृतक आत्मा का आवाहन उसका नाम लेकर करे। फिर अथर्ववेद के वैतान सूत्र के तीसरे अध्याय में बताए गए नान्दी श्राद्ध के मन्त्रों से कोयलों को अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मणों के बैठने के आसन के नीचे दर्भ (कुश) रख कर उन पर ब्राह्मणों को बैठाकर भोजन कराने का संकल्प करे। उस समय ही वह मृतक आतमा जिस बीमारी से मरा होगा, उसी तरह की बीमारी से ग्रस्त प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्राद्ध-भोजी

ब्राह्मणों के पत्तलों से थोड़ा-थोड़ा भोजन निकालता हुआ पत्तल पर रखता हुआ दिखाई पड़ता है।

एक दूसरा प्रयोग वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने का है। पाठा के मूल और दर्भों की बनी माला को निम्नांकित विनियोग द्वारा विनियुक्त करे—

विनियोग—अस्य दर्भमणेः मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः दर्भमणिर्देवता वाद-विवादे विजय श्रीं प्रप्त्यर्थं विनियोगः।

इसके बाद अथर्ववेद के काण्ड १ सूक्त ६५ के १० से तथा काण्ड १ सूक्त १२ के १० मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर माला को गले में धारण कर वाद-विवाद सभा में जाए। निश्चय ही विजय होती है।

७. **आयमगन्पर्णमणि**—इसकी पहचान पलाश (ढाक) वृक्ष के पत्तों से की गई हैं। पलाशमणि धारण करने से धन-धान्य की वृद्धि, स्वस्त्ययन, आयुष्यवृद्धि होती है। कुचक्रों, षडयन्त्रों का दमन होता है। सम्मोहन और वशीकरण करता है। बुद्धिवर्द्धक और पुष्टिकारक है। यह मणि चित्र, संगीत, शिल्प-विशेषज्ञों, नर्तकों और जन सेवकों के लिए श्रीकीर्ति, सिद्धि प्रदाता है।

इसका विनियोग वरण मणि की भांति है अभिमान्त्रण अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त ५ से पूर्ववत् करना चाहिए।

मणि बंधन के ये कतिपय प्रयोग बहुत ही लाभदायक, सरल और साध्य हैं। अब कुछ प्रयोग शान्ति, पुष्टि कर्मों के लिखे जा रहे हैं। इनका प्रयोग अति सरल है। पढ़ कर ही नहीं, स्वयं करके देखना चाहिए।

शान्ति पुष्टि कर्म

अथर्ववेद मुख्यतया शान्ति-पुष्टि कर्मों से संबंधित है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अथर्ववेद; ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद से भिन्न है। ऋग्वेद आदि

में भी शान्तिपुष्टि कर्म का विधान है। हाँ, अथर्ववेद में उनकी अपेक्षा अधिक हैं। चारों वेदों को भली भाँति पढ़ने से यह विश्वास होता है कि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए, मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जो स्तुतियाँ की जाती हैं, जो यज्ञ, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि किये जाते हैं, उनके अन्तराल में कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य निहित है। देवता भी उस शक्ति की सहायता की अपेक्षा रखते हैं। ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि—

'अपनी स्तुतियों से वह आदि शक्ति भारत की जनता की रक्षा करे।' उस आदि शक्ति की उपासना के अतिरिक्त एक और निम्न कोटि की उपासना का 'धर्म' और 'यातु' को महती शक्ति मानकर अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है।

अथर्ववेद में दानवों को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए उपासना पद्धति मिलती है। जिस प्रकार दानवों से भय प्रकट किया गया है, उसी प्रकार रुद्र, वरुण सदृश देवताओं से भी इसलिए भय प्रकट किया गया है कि ये देवता भी क्रुद्ध होने पर दानवों की भाँति क्षति पहुँचाने में समर्थ हैं।

वेदों में 'यातु' की उपासना का एक आधार है। यह तीसरे प्रकार की उपासना अथर्ववेद में प्रायः धर्म के साथ संयुक्त मिलती है। 'धर्म' और 'यातु' के विषय एक ही सूक्त में कहीं-कहीं एक ही मन्त्र में सम्पृक्त मिलते हैं। (अथर्व० १-६, ३-११, ४-४०, १६-३४, ४४ इत्यादि)।

यातुकर्म-आधिदैविक, आधिभौतिक व्याधियों को दूर करने में 'यातु' प्रयोग बहुत ही लाभदायक और अमोघ है। अथर्ववेद में 'यातु' और 'धर्म' को एक साथ सम्पृक्त कर 'यातुकर्म प्रयोग' और 'धर्मानुष्ठान' को प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विद्वान् एवं अधिकतर भारतीय विद्वान् 'यातु' का

अर्थ 'जादू', 'इन्द्रजाल' 'टोटका', 'टोना, लगाते हैं। किन्तु यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले अथर्ववेदीय प्रयोग 'यातु' हैं। और ध्यान योग, भक्ति योग तथा ज्ञान योग द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न 'धर्म' हैं। तात्पर्य यह कि अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्म 'यातुकर्म' और मोक्ष के लिए किया जाने वाला कर्म 'धर्म' है।

व्याधियों के विनाश के लिए शान्तिपुष्टि कर्म—विविध प्रकार की व्याधियों, मानसिक रोगों और भूतावेश के कारण मनुष्य का जीवन हीन और हेय बन जाता है। उसके कार्य-व्यापार असफल होते हैं और वह अभागा, दरिद्री बन कर हताश और निराश बन जाता हैं। इस के दोषों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में मणिबन्धन, मन्त्रोपचार, ओषधि और तन्त्रोपचार का विधान बताया गया है। मणिबन्धन का संक्षिप्त परिचय इसी अध्याय में दिया गया है। मणिबन्धन की भाँति अथर्ववेद रक्षाकरण्ड का विधान बतलाता है। जिस प्रयोजन को सिद्ध करना हो उस प्रयोजन के मन्त्र से रक्षासूत्र को अभिमन्त्रित कर बाँध देना रक्षाकरण्ड है। अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा अभिसेचन, अभिषेक, तत्व-शुद्धि आदि प्रयोग मन्त्र विधान के अन्तर्गत हैं। मन्त्रों द्वारा सिद्ध की गईं ओषधियों का प्रयोग ओषधोपचार के अन्तर्गत है। और विविध प्रकार के तन्त्र तन्त्र -विधान के अन्तर्गत हैं। अथर्ववेद के इन मुख्य विषयों के कतिपय प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अथर्ववेदीय चिकित्सा—यह ध्यान रखा जाए कि किसी भी रोग को दूर करने के लिए अथर्ववेद में तीन प्रकार की विधियाँ हैं—

१—रोगी को बैठाकर या लिटाकर मन्त्र पढ़ते हुए कुश-अपामार्ग से उसके सिर पर जल से अभिसेचन करना।

२—रोगी के सामने मन्त्रों द्वारा हवन करना

३—मन्त्रों को पढ़ते हुए रोगी के शरीर में हाथ फेरना।

इन तीन प्रकार की विधियों में किसी एक विधि से रोग शमन किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के रोगों के शमन के लिए निम्नांकित अथर्ववेदीय मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है—

तक्म (ज्वर) नाश के लिए अथर्ववेद के काण्ड १,२५; ५-४; ६-२०; ७-२१; और १६-३६ सूक्तों के मन्त्र।

जलोदर रोग के लिए—अथर्व० १-१०; ६-२४; ७-८३।

आस्राव दूर करने के लिए—अथर्व० १-२; २-३; ६-४४।

आनुवंशिक रोग दूर करने के लिए—अथर्व० २-८, १०; ३-७।

विष का प्रभाव दूर करने के. लिए—अर्थ ५-१३, १६; ६-१२; ७-५६, ८८।

उन्माद रोग दूर करने के लिए—अर्थ ६-१११।

कृमि रोग दूर करने के लिए— अथर्व २-३१, ३२; ५-३३।

व्रण (नासूर, भगन्दर) रोग दूर क़रने के लिए आ० ४-१३; ५-५।

टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ने के लिए—अथर्ववेद ४-; ५-५।

कृत्या प्रतिहारकर्म—दैत्यों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, राक्षसों और शत्रुओं के शमन के लिए किए जाने वाले अभिचार कर्म या कृत्यापरिहार कर्म कहे जाते हैं। कृत्या प्रतिहार के उद्देश्यों का यदि वर्गीकरण किया जाय तो सभी प्रयोजनकों का समाहार निम्नांकित पाँच वर्गों में होता है—

१. प्रेत, दैत्य-बाधा निवारण।

२. राजकर्म ।

३. शत्रुओं के प्रति ।

४. स्त्री-प्राप्ति ।

५. उच्च पद प्राप्ति ।

१. भूतों, प्रेतों, पिशाचों और शत्रुओं के शमन के लिए अथर्ववेद (२-१४, ३-६; ५-७-८-२८-२९; ६-२-३-४; ७-११०) के अभिचार मन्त्रों का प्रयोग पूर्वोक्तविधि से करना चाहिए। इन अभिचार कर्मों में प्रयुक्त रक्षाकरण्ड अथवा मणियाँ तत्काल फल देती हैं।

२. अभिचारकर्मों के अन्तर्गत स्त्रियों को सम्मोहित करना, कुमारी कन्याओं के विवाह की समस्याओं को हल करना, बन्ध्या स्त्रियों को पुत्रवती बनाना, सौतों से परेशान स्त्रियों को सौतों से मुक्ति दिलाना अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्रियों का वन्ध्याकरण करना और पुरुषों को नपुंसक बनाना।

३. विवाह, गर्भधारण आदि प्रयोजनों के लिए अथर्ववेद (३-२३, ६-११-१७-८१;२, १४,३,१८,७,३५,११३,११४ तथा १-३४; २-३०; ३-२५; ६-८,६,८६,१०२,१२६; १३०-१३२,१३६;७-३८) के मन्त्रों द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

४. स्त्री सम्मोहन के लिए अथर्ववेद (६-१३८,७-६० तथा १-१४) के मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

५. अथर्ववेद का सौमनस्य सूक्त आपसी कलह, मन-मुटाव पारिवारिक विद्वेष को दूर कर सहचित्तत्त्व, हार्दिकता, लोकप्रियता, लोक-प्रतिष्ठा, सामाजिन श्रेय, आर्थिक उन्नति और सफलता प्राप्त कराने में अमोघ है।

इस सूत्र के (३-३०) मन्त्र को पारिवारिक एकता, सुख सौहार्द बढ़ाने में प्रयुक्त करना चाहिए। दुर्भावना और कलह शमन के लिए

अथर्ववेद के (६-४२-४३; ६४,७३,७४,७,५२) मन्त्रों से प्रयोग करना चाहिए। समाज में अपना वर्चस्व कायम करने के लिए अथर्ववेद के (७-१२) मन्त्र का किसी को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए (६-६४) मन्त्र से प्रयोग करना चाहिए।

६. प्रशासनिक कार्यकलाप, क्रिया-विधियों को अथर्ववेद में 'राज्य-कर्मणि' कहा गया है। राजकर्म के अन्तर्गत राजा या राष्ट्रपति के निर्वाचन, निर्वासित, निष्कासित, पदच्युत सत्ताधिकारी को पुनः सत्तारूढ़ कराना, अन्यान्य राष्ट्राध्यक्षों पर अपना वर्चस्व कायम करना इत्यादि विषय मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक प्रभाव, यश और राज-नीतिक-प्रतिद्वंदिता में विजय प्राप्त कराने के विषय भी 'राज्यकर्म' के अन्तर्गत आते हैं। उपर्युक्त प्रयोजनों के लिए अथर्ववेद के निम्नांकित मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री के निर्वाचन के लिए—अथ० ४-८; ३-४।

पदच्युत सत्ताधिकारी को पुनः सत्तारूढ़ कराने के लिए—अथ० ३-३।

दूसरे राष्ट्राध्यक्षों पर प्रभाव जमाने के लिए—अथ० ४-२२।

शासन सत्ता को सुदृढ़ रखने के लिए—अथ० ३-५।

ओज और प्रभाव स्थापित करने के लिए—अथ० ६-३८।

यश, मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए—अथ० ६-३९।

युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए—अथ० १-१९; ३-१, ३-२, ५-२२-२१, ६-९७-९९, ८८; ११, ९, १० मन्त्रों से प्रयोग करना चाहिए।

७. ऐश्वर्यप्राप्ति, सन्तति लाभ, पशु प्राप्ति, गृह-निर्माण, क्षेम-प्राप्ति, व्यापार-वृद्धि, सर्पभय निवारण, बाधाओं, विपत्तियों के निवारण के लिए क्रम से अथर्ववेद के १-१३, ३-१२, १३-१५, १६, १७, २४, ४,

३, ३८; ६-५५, ५६, ६२, १०६, १२८, ७, ६, ५०, १०, ४ सूक्तों और मन्त्रों के प्रयोग करना चाहिए।

८. जिन पुराकृत पापों से बनते हुए काम बिगड़ते हैं, नेकी के बदले बदी मिलती है। मिथ्या आरोप और कलंक लगते हैं, चिन्ता, भय, शोक घेरे रहते हैं; उनके निवारण के लिए अथर्ववेद (६-११४, ४५, ११५, २६, २७, २६, ११२, ४६; ७-११५) सूत्रों और मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

आथर्वण-तंत्र

धनधान्य, सन्तान-सुख, यश, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए उदुम्बर (गूलर) की जड़ रवि-पुष्य योग में लाकर अथर्ववेद के अपांसूक्त से उस जड़ को गंगाजल से अभिमंत्रित कर सोने की तावीज में भर कर पुनः अथर्ववेद के अर्थोत्थापनगण के मंत्रों से गंगाजल द्वारा अभिसिंचित, अभिषिक्त कर नीचे लिखे मंत्रों से आम की लकड़ी की अग्नि में अष्टांग हवन सामग्री में १०८ आहुतियाँ देकर तावीज को हवन के धुएं से धूपित कर दाहिनी भुजा या गले में बाँधने से विपुल धन-धान्य, ऐश्वर्य, सुख की वृद्धि होती है।

आहुति मंत्र

ॐ पुष्टिरसि पुष्टया मा समङ्‍्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।

औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः।

सर्ववीरं नियच्छ रायैस्पोषाय प्रति मुञ्जे अहं त्वाम्॥

आहुतियाँ देने के बाद लालरंग के रेशम के धागे में पिरोई हुई सोने की तावीज को उपर्युक्त आहुति मंत्रों को पढ़ते हुए धूपित कर धारण करना चाहिए।

अष्टांग हवन सामग्री

सफेद चन्दन २५० ग्राम, लाल चन्दन १०० ग्राम, काले तिल २५० ग्राम० अगर ५० ग्राम, तगर ५० ग्राम, नागरमोथा ५० ग्राम, कपूर ५० ग्राम, शुद्ध केशर ५ ग्राम, जौ ५० ग्राम, चावल ५० ग्राम, पंचमेवा १२५ ग्राम, शुद्ध घी (जितना मिलाया जा सके) और शक्कर ५० ग्राम।

पारिवारिक सुख-सौहार्द-शान्ति के लिये

जिस परिवार का विघटन हो रहा हो, कलह, विद्वेष व्याप्त हो। आपसी तनाव में एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए षडयंत्र किए जा रहे हों। उस परिवार में एकता, सौहार्द, शान्ति, प्रेम और सुख उत्पन्न कराने के लिए आथर्वण तंत्र अमोघ है।

विधि—श्रावणी पूर्णिमा से लेकर आषाढ़ी पूर्णिमा तक एक वर्ष पर्यंन्त स्वयं गृहपति नीचे लिखे अथर्ववेद के मंत्रों से १०८ आहुतियाँ अष्टांग हवन सामग्री से आम की लकड़ी की अग्नि में दिया करे। स्वयं न कर सके तो किसी विशेषज्ञ द्वारा कराए।

आहुति-मंत्र

स हृदयं सौमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यतवत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचम् वदतु शान्तिवाम् ॥

यदि पारिवारिक वैर कई पीढ़ियों से चला आ रहा हो तो इस तंत्र को पूरे एक वर्ष तक किया जाए और यदि वैर-भाव नया हो अथवा भरा-पूरा परिवार आपसी कलह, घृणा, शंका से टूट रहा हो तो केवल ४१ दिन तक उपर्युक्त मंत्रों से हवन करने पर पारिवारिक सुख, सौहार्द, समृद्धि की वृद्धि होती है।

और यदि किसी व्यक्ति विशेष के कारण परिवार बिगड़ रहा हो अथवा किसी और के क्रोध के कारण परिवार में मतभेद हो रहा हो तो ऐसे व्यक्तियों के क्रोध और उनकी दुरभि संधि को शान्त करने के लिए नीचे लिखे मंत्रों से उपर्युक्त विधि से २१ दिन तक हवन करने से सुख-शान्ति की वृद्धि होती है। पारिवारिक सौमनस्य बढ़ता है।

आहुति मंत्र

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै॥
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः।
अभितिष्ठाभि ते मन्युं पाष्ण्या प्रपदेन च।
यथा वशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि॥

रोग-दोष शामक तंत्र

कैंसर, कारबंकल, नासूर, भगन्दर जैसे असाध्य रोगों को दूर करने तथा शत्रु का दमन करने लिए अथर्ववेद के रणसूक्त के मंत्र अमोघ सिद्ध हैं, कभी विफल नहीं होते हैं।

रोगशमन करना हो तो रोगी के जिस अंग में रोग या घाव हो, उस अंग पर नई मूंज को कूट कर भिगोकर रस्सी बनाकर बाँध दिया जाए। इसके बाद अपामार्ग की जड़ रोगी के शरीर को स्पर्श कराते हुए नीचे लिखे मंत्रों को पढ़ें—

मंत्र

ॐ विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्॥
ज्या के परिणोनमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि॥

वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चयन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद्यावयदिद्युमिन्द्र ॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुन्ज इत् ॥

२१ दिन तक प्रतिदिन यह क्रिया की जाए । अपामार्ग का संस्पर्शन समाप्त होने के बाद रोगी को काली तुलसी की ३६ पत्तियाँ गाय के पावभर दही में मथ कर नित्य पिलाया जाए ।

यदि कोई व्यक्ति ज्वरातिसार अथवा मूत्रातिसार से पीड़ित हो तो उसकी कमर में मूँज बाँधकर गंगाजी की रेणुका मिट्टी अथवा बाँबी की मिट्टी घोलकर उपर्युक्त मंत्रों से अभिमंत्रित कर पिला दिया जाए और रोगी के पेट में पेड़ू में, घी मल दिया जाए । तुरन्त रोग दूर हो जाता है ।

आयु, वर्चस्व, पराक्रम वर्द्धक तंत्र—दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए, आत्मशक्ति, संकल्पशक्ति बढ़ाने के लिए, पराक्रम और आयुष्य की वृद्धि के लिए निम्नांकित आथर्वण तंत्र बहुत ही लाभदायक है ।

हिरण्यमणि (कनक लहसुनिया) को सोने की अंगूठी में जड़वा कर नीचे लिखे अथर्ववेद के मंत्रों से लहसुनिया को दूध से अभिमंत्रित किया जाए । फिर इन्हीं मंत्रों से १०८ बार हवन करके हवन के धूम में लहसुनिया को दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली में धारण करने से आयु-वर्चस्व-पराक्रम की वृद्धि होती है ।

अभिमंत्रण, आहुति-मंत्र

यदा बन्धन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे वलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सजीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो विभरदहिरण्यम् ।।
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ।।

श्वेत कुष्ठ और गलित कुष्ठ के निवारण के लिए—प्रारम्भ में रोगी को सात दिन तक पंचगव्य पान कराया जाए । गोमूत्र और गोमय शरीर में मलकर स्नान कराया जाए । सात दिन बाद रोगी प्रतिदिन सायंकाल अमरबेल को पैरों के नीचे रखकर उसे तब तक कुचलता रहे, जब तक दोनों पैर अमरबेल के रस के भीग न जाएँ ।

पंचगव्य पान करते हुए, स्नान करते हुए और अमरबेल कुचलते हुए अथर्ववेद के निम्नांकित मन्त्रों से चिचिड़ा की जड़ गंगाजल में डुबोकर रोगी का मार्जन करते रहना चाहिए ।

मार्जन-मन्त्र

ॐ नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ।।
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ।।
असिते ते प्रलय नामास्थानमसितं तव ।
अस्क्निय्म्योषधे निरितो नाशया पृषत् ।।
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम् ।।

लगातार ६४ दिन तक यह तन्त्र करते रहने से हर प्रकार के कुष्ट रोग दूर होते हैं ।

आनुवंशिक रोगनाशक तन्त्र—कुछ रोग वंश-परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवार के लोगों को हुआ करते हैं । चिकित्सा असफल रहती है ।

ऐसे रोग असाध्य कहे जाते हैं। ऐसे रोगी का उपचार अथर्ववेद में इस प्रकार है—

रोगी को अपने सामने बैठाकर प्रयोक्ता हरिणशृंग को दाहिने हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़े

नाति दूरस्यो य एकश्छदिरिव प्रकाशमानो भवति ।
तेनाऽहं तवाङ्गेभ्यः क्षेत्रियम् अपसरयामि ॥

इतना कह कर प्रयोक्ता ताम्रपात्र में जल लेकर जल से रोगी को रोग मुक्त करने की प्रार्थना अथर्वाऋषि से करे, फिर उस जल को नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—

मन्त्र

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपात् सर्वां दूर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥

जल को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इसी मन्त्र को पढ़ते हुए प्रयोक्ता हरिणश्रृंग को उसी जल में डुबा कर मन्त्र पढ़ते हुए २१ बार श्रृंग से जल का आलोडन कर उस जल को रोगी को पिला दे और हरिण श्रृंग ताबीज में भरकर रोगी के गले में पहना दें। मात्र इतनी ही क्रिया से सैकड़ों वर्ष से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आने वाला आनुवंशिक रोग चुटकी बजाते दूर हो जाता है।

दमा-कास-श्वास दूर करने के लिए—रोगी स्वयं नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ते हुए अपने दोनों हाथ की हथेलियों से शिर से लेकर पाँव तक सर्वाङ्ग शरीर का स्पर्श २१ बार मन्त्र पढ़ कर २१ बार संस्पर्श कर नित्य नियमानुसार ४१ दिन तक यह तन्त्र करने से वर्षों पुराना दमा रोग ४१ दिन में दूर हो जाता है। यदि कोई स्वयं न कर सके तो किसी विशेषज्ञ द्वारा यह तन्त्र कराया जा सकता है।

मन्त्र

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥
यथा बाणः सुशंसितः परापतत्याशुमत ।
एवा त्वं कासे प्र पतत्पृथिव्या अनुसंवतम् ॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥

सर्वज्वरहरण तंत्र—किसी भी प्रकार का ज्वर हो; छूटता न हो, औषधि काम न करती हो तो नीचे लिखे मन्त्र से रोगी के शिर पर कुश-अपामार्ग और गंगाजल से अभिसेचन करें। तीन दिन में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

मन्त्र

अथर्वाङ्गि रसे नमः ॐ अथर्वाऋषये नमः । नमः अङ्गिरसे ह्लीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर भृणु भृणु हं हं गर्ज गर्ज एकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चतुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्विवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमिषिकं अट अट भट भट हुं फट् अमुकस्य (यहाँ पर रोगी का नाम लिया जाए) ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा ।

आथर्वण सर्वज्वरशान्ति-विधान

विनियोग—अस्य मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता सर्व ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः ।

मूलमन्त्र—ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्ट नाशिनि स्वाहा ।

इस मंत्र का दस हजार जप करने से तथा जप के बाद आम के पत्तों से इसी मन्त्र द्वारा १०८ आहुतियाँ रोगी की शय्या के पास देने से उसी दिन अरिष्टजन्य सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं।

आथर्वणोक्त ज्वर निदान

१. यदि किसी को धनिष्ठा नक्षत्र में ज्वर चढ़े तो उसे दस दिन तक ज्वर रहता है।

२. शतभिषा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन या दश दिन तक रहता है।

३. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर मृत्युकारक होता है।

४. उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर चौदह दिन तक रहता है।

५. रेवती नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँच या छह दिन तक रहता है।

६. अश्विनी नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन तक रहता है।

७. भरणी नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँचवें दिन में मार डालता है।

८. कृत्तिका नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर एक सप्ताह या २१ दिन तक रहता है।

९. रोहिणी नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर आठ दिन तक रहता है।

१०. मृगशिरा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर नौ दिन तक रहता है।

११. आर्द्रानक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँच दिन में अथवा ४५ दिन में मार डालता है।

१२. पुनर्वसु नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर १३ दिन अथवा २७ दिन तक रहता है।

१३. पुष्य नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर ३ दिन, अधिक से अधिक सात दिन तक रहता है।

१४. अश्लेषा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर बहुत दिनों तक रहने के बाद मार डालता है।

१५. मघा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर १२ दिन तक मृत्यु से लड़ाता है। यदि १२ दिन तक रोगी न मरा तो बच जाता है।

१६. पूर्वा फाल्गुनी में चढ़ा हुआ ज्वर मृत्यदायक होता है।

१७. उत्तराफाल्गुनी में चढ़ा हुआ ज्वर आठ या नौ दिन तक रहता है।

१८. हस्त नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर आठ दिन के अन्दर उतर जाता है। यदि नहीं उतरता तो चित्रा नक्षत्र के लगते ही उतर जाता है।

१९. स्वाती नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर दस दिन या ४५ दिन तक रहता है।

२०. विशाखा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर २१ दिन के अन्दर मार डालता है।

२१. अनुराधा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर आठ दिन रहने के बाद असाध्य हो जाता है।

२२. ज्येष्ठा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर यदि पाँच दिन में नहीं मारता है तो १२ दिन में ठीक हो जाता है।

२३. मूल नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर यदि १० दिन तक बना रहा तो उसके बाद उसके लिए कोई चिकित्सा कारगर नहीं होती है।

२४. पूर्वाषाढ़ा में चढ़ा हुआ ज्वर ९ दिन तक रहता है, इससे अधिक रह गया मतो असाध्य हो जाता है।

२५. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर एक महीने तक कष्ट देता है। यदि आगे रह गया तो ९ महीने तक कष्ट देता रहता है।

२६. श्रवण नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक पीड़ित करता है।

आथर्वण व्यक्ति को चाहिए कि ज्वर शमन का तन्त्र प्रयोग इस ज्वर निदान को समझ कर करें।

रोग या ज्वर शान्त्यर्थ आथर्वण-विधान

१. कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न रोग के शमन के लिए **अग्निर्मूर्द्धा०** मन्त्र पढ़ते हुए पीपल की लकड़ी की आग में दही से हवन करना चाहिए।

२. रोहिणी नणत्र में उत्पन्न रोग की शान्ति के लिए **हिरण्यगर्भः०** इस मन्त्र से सर्व वीजमयी १०८ आहुतियाँ वट की लकड़ी की आग में देनी चाहिए।

३. आर्द्रा नक्षत्र-जन्य रोगों की शान्ति के लिए ॐ **इमारुद्राय तव से कर्पादिनः** मन्त्र से मधु (शहद) से १०८ आहुतियाँ आम की लकड़ी की आग में देनी चाहिए।

४. पुनर्वसु नक्षत्र-जन्य रोग की शान्ति के लिए ॐ महीमूव्यु० मन्त्र से चावल की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

५. पुष्य नक्षत्र-जन्य रोग की शान्ति के लिए ॐ **वृहस्पते अति०** इस मन्त्र से घी और खीर मिलाकर १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

६. अश्लेषानक्षत्र-जन्य दोष की शान्ति के लिए ॐ **नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०** मन्त्र की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

७. मघा नक्षत्र-जन्य दोष की शान्ति के लिए ॐ **इदं पितृभ्यो नमोस्त्वद्य०** मन्त्र से शालिधान की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

८. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र-जन्य दोष के लिए ॐ **प्रातर्जितम०** मन्त्र से कंकु (काकुन) की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

९. उत्तराफालगुनी-जन्य रोग-दोष निवारण के लिए ॐ **पुरो यमस्य०** मन्त्र द्वारा घी की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१०. हस्त नक्षत्र-जन्य दोष निवारण के लिए ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्० मन्त्र द्वारा दधि की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

११. चित्रा नक्षत्र-जन्य दोष के निवारण के लिए ॐ द्यावापृथ्वी वरुणस्य० मन्त्र द्वारा मधुमिश्रित खीर की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१२. स्वाती नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्री० मन्त्र द्वारा घृत-तिल की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१३. विशाखा नक्षत्र-जन्य दोष–निवारण के लिए ॐ इन्द्राग्नी आगतेसुतं मन्त्र द्वारा चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१४. अनुराधा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ महीभूपाम्० मन्त्र द्वारा लहसुन की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१५. ज्येष्ठा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ फल्गु नामो० मन्त्र द्वारा करिहारी (इन्द्रायण) की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१६. मूल नक्षत्र जन्य दोष-निवारण के लिए अयं ते योनिर्ऋत्वियो० मन्त्र द्वारा अनन्तमूल की १०८ आहुतियां देनी चाहिए।

१७. पूर्वाषाढ नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ इदमाप: प्रवतताघप० मन्त्र द्वारा शालिधान की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१८. उत्तराषाढ़ नक्षत्र जन्य-दोष निवारण के लिए ॐ विश्वेभ्यो मारुत० मन्त्र द्वारा नागौरी असगंध की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१९. श्रावण नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ इदं विष्णु-र्विचक्रमे० मन्त्र द्वारा लाल वर्ण के पुष्प से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२०. धनिष्ठा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ वायुरग्निर्वसु श्रवा०: मन्त्र से बरगद की बरोंह की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२१. शतभिषा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ तत्वायामि- ब्रह्मणा० मन्त्र द्वारा कमल पुष्पों से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२२. पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र-जन्म दोष-निवारण के लिए ॐ उत्तरा- हिब्रन्धः० मन्त्र द्वारा चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२३. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र जन्य दोष निवारण के लिए ॐ अहिरिव भोगैः० मन्त्र द्वारा शालि चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२४. रेवती नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ शस्तो तारश्च इहष्ठास्ति० मन्त्र से अक्षत और फल से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२५. अश्विनी नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ उभा पिबत- मश्विनोभाम०: मन्त्र द्वारा दुधारु (गूलर, वट, पीपल, पाकड़) वृक्षों की लकड़ियों से १०८ आहुतियाँ इमली की लकड़ी के कोयले की आग में देनी चाहिए '

२६. भरणी नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए ॐ मासं यमः मन्त्र द्वारा चावल से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

●

८ | लोक-जीवन में तंत्र की अभिव्याप्ति

लोक-संस्कृति, लोक-जीवन का अध्ययन करने पर पता चलता है कि लोक-मानस में टोटका, टोना के रूप में तन्त्र समाया हुआ है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मंगल-कामना के लिए टोटका और टोना का प्रयोग देखा जाता है। पाश्चात्य तथा भारतीय मनीषियों का मत है कि टोटका-टोना का उद्गम अथर्ववेद से हुआ है, किन्तु गहराई से वेदों का अध्ययन करने से वेदों से ही यह रहस्य उद्घाटित होता है कि जब संस्कृति, सभ्यता विकसित नहीं हुई थी, वाङ्मय का निर्माण, विकास नहीं हुआ था, उससे भी बहुत पहले आदिम मानव-समाज में टोटका, टोना (तन्त्र) बीज रूप में ही नहीं; व्यवहार में प्रचालित और प्रयुक्त था। वाङ्मय का जब निर्माण और विकास हुआ तो अथर्ववेद, आगमशास्त्र, तंत्र-शास्त्र और पुराणों ने आदिम मानव-समाज के टोटकों, टोना कोशास्त्रीय रूप देकर उनका उद्धार और प्रचार किया विकास के साथ विकार भी बढ़ते हैं। जैसे-जैसे मनुष्य समाज की इच्छाएँ, आवश्यकताएँ बढ़ती

गईं, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या का क्षेत्र बढ़ता गया, वैसे ही टोटके-टोने भी विभिन्न परिवेशों में, विभिन्न रूप विधानों में प्रचलित और परिवर्द्धित होते गए।

प्रारंभ काल से लेकर आज तक टोटका-टोना मुख्यतः मंगल-कामना रखकर अनिष्ट-निवारण के लिए किए जाते हैं, गर्भावस्था में गर्भ की रक्षा से लेकर शिशु उत्पन्न होने पर जब तक वह किशोरवय का रहता है, स्त्रियाँ टोटका से उसके रोग-दोष का निवारण करती हैं। स्त्रियाँ प्रारंभ से ही टोटका-टोना का प्रयोग करती आई हैं इसलिए टोटका अब शास्त्रीय न रह कर केवल स्त्री-जाति द्वारा बोला जाने वाला शब्द मात्र रह गया है। इसके विपरीत टोना अमंगल कार्यों—रोग-दोष उत्पन्न करने, मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, वशीकरण आदि के लिए किया जाता है। ऐसे अमांगलिक कार्यों में पशु बलि भी दी जाती है, कहीं-कहीं नर-बलि की भी दूषित, हेय और जघन्य पद्धति है।

टोटका अधिकतर स्त्रियाँ करती हैं और टोना करने वाले पुरुष प्रादेशिक बोलियों के अनुसार ओझा, औघड़, सयाने कहे जाते हैं तथा स्त्रियाँ 'डाकिनी', 'डाइन' और 'टोनहाइन' कही जाती हैं। ऐसे पुरुषों और स्त्रियों से सामान्य जन भयभीत रहा करते हैं।

टोटका और टोना दोनों में बहुत अन्तर है। टोटका में किसी शास्त्र का बिधान या मन्त्र के जप, हवन का विधान नहीं रहता है। किन्तु टोना तो एक प्रकार का अनुष्ठान है, उसके भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के विभिन्न मन्त्र होते हैं और उन मन्त्रों को उनके प्रयोजन के अनुसार जगाया जाता है। तथा किसी पर जब उनका प्रयोग किया जाता है, तब भी उसकी एक विशिष्ट प्रयोग-विधि होती है। टोटके अधिकतर रोग-निवारण, अनिष्ट और बाधाएँ दूर करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। अथर्ववेद में टोटका को तन्त्रं कह कर प्रतिष्ठापित किया गया है। लोक-जीवन में जिसे टोना कहा जाता है, उसी को तन्त्रशास्त्र में षट्कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, वशीकरण) कहा जाता है। अथर्ववेद में षट्कर्मों का

भी विधान बताया गया है। लोक-जीवन में मारण को 'मूठ' संज्ञा दी गई है।

तन्त्र-शास्त्र में मंत्र को सिद्ध करने के लिए मुख्यतया तीन शर्तें हैं—

१. काल—प्रत्येक तांत्रिक अनुष्ठान के लिए प्रातःकाल गोधूलि-बेला, मध्य रात्रि या मध्याह्न का जो भी समय निश्चित होता है, उसे काल कहते हैं।

२. द्रव्य—मन्त्र की साधना के लिए मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता के स्वरूप, स्वभाव और कार्य-प्रयोजन के अनुकूल पूजन सामग्री को द्रव्य कहा गया है।

३. शब्द—अनुष्ठान या साधना के मन्त्र का शुद्ध उच्चारण शब्द है। तन्त्रशास्त्र प्रत्येक मन्त्र के चार भाग बतलाता है—

१. प्रणव (ॐ); २. बीज (बीजाक्षर—देवता का नाम); ३. मन्त्र और ४. पल्लव (मन्त्र के अन्त लगा हुआ नमः या स्वाहा आदि शब्द)। जिसका उच्चारण कर अहुति दी जाती है।

अथर्ववेद में अनेक ऐसे तन्त्र (टोटका) हैं, जिनमें मन्त्र के जप, हवन आदि की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे पाण्डु रोग (पीलिया) ग्रस्त रोगी को लाल बैल के बाल पानी में मिला कर पिला देने से पीलिया रोग दूर हो जाता है तथा अतिसार रोग से ग्रस्त रोगी की कमर में मूँज की रस्सी बाँध कर साँप की बाँबी की मिट्टी पानी के साथ पिला देने से तत्काल अतिसार रोग दूर हो जाता है, हिक्का (हिचकी) रोग में सेन्धव (सेंधा नमक) पीस कर पानी के साथ पिला देने से रोग दूर हो जाता है। वात-व्याधि (साइटिका पेन) में वरुण वृक्ष की जड़ कमर में बाँधने से पुराना से पुराना वात व्याधि रोग दूर हो जाता है। टोटके शास्त्रीय भी होते हैं, किन्तु उनके व्यहार के लिए काल और द्रव्य दो ही शर्तें हैं, कहीं-कहीं काल भी नहीं, केवल द्रव्य ही प्रधान होता है। जैसे अथर्ववेद का एक तन्त्र (टोटका) है, जो मारण, मोहन, वशीकरण

और आकर्षण प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है, इसमें काल, मन्त्र और द्रव्य की शर्त है।

वेर के काँटे और कूट वृक्षा कीं जड़ लाकर वेर के २१ कांटे एक साथ घी में डुबो कर अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के २५वें सूक्त के ५वें अनुवाक को पढ़ते हुए सभी इक्कीस काँटों की आहुति स्वाहा कह कर एक साथ दे दी जाय और कूट वृक्ष की जड़ को मक्खन से तर करके हवन की आग में दूर से तपाए। यह प्रयोग प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायंकाल दिन में तीन बार किया जाता है। २१ दिन में यह तन्त्र-साधना पूरी होती है। प्रयोक्त को पहले तीन दिनों तक उत्तरी खाट में सोना चाहिए। जिस किसी का नाम लेकर कूट की जड़ तपाई जाती है, वह वशीभूत होता है और यदि किसी का नाम ले कर जड़ की आहुति आग में छोड़ी जाय तो वह व्यक्ति मर जाता है। तथा किसी व्यक्ति विशेष का नाम लिए बिना २१ दिन तक उपर्युक्त विधि से अनुष्ठान कर तपाई हुई जड़ को रख लिया जाय तो फिर जिसे भी वह जड़ दिखाई जाए, वही वह वश में हो जाता है।

प्रत्येक टोना-टोटका के लिए यह आवश्यक है कि उसमें मन्त्र-सिद्धि की तरह द्रव्य और काल का समावेश करके टोटका-टोना को दूर करने का प्रयोग किया जाता है। जप, हवन आदि अपेक्षित नहीं हैं।

१. जैसे, गर्भिणी स्त्री का प्रसवकाल निकट आने पर सूतिका गृह (सोवर) के बाहर द्वार के दोनों ओर दीवार पर गोबर से चक्रव्यूह का आकार बना दिया जाता है। और गर्भिणी के कमर में काले सूत से बहेड़ा बाँध कर लटका दिया जाता है सूतिकागृह की शय्या के सिरहाने लोखर (छुरी, चाकू) रख दिया जाता है। इस प्रकार का टोटका करने से प्रसव निर्विघ्न हो जाता है।

बच्चा जब तक साल भर का नहीं हो जाता है, तब तक उसके

सिरहाने में छुरी-चाकू बराबर रखा जाता है। इससे सोता हुआ बच्चा चौंकता नहीं, डरता नहीं।

२. बच्चा जब ६ महीने का हो जाता है, तो उसका अन्नप्राशन किया जाता है। अन्न प्राशन के समय बच्चे के सामने आगे-पीछे, दाएं, बाएँ तरह-तरह की चीजें फैला कर रख दी जाती हैं। बच्चा जिस वस्तु पर पहले हाथ लगाता है, उसीसे उसके जीवन का भविष्य समझा जाता है; जैसे यदि कलम, दवात, कागज उठा लेता है तो बच्चा लिखने-पढ़ने का काम करेगा ऐसा विश्वास करके माता-पिता उस दिशा में उसे आगे बढ़ाने की चेष्टा करते रहते हैं।

३. बच्चे की आँखों में काजल लगा कर उसके माथे में दिठौना लगा दिया जाता है। इस से बच्चे को बुरी नजर नहीं लगती है। भूत, प्रेत की वाधा से, नजर, दीठ से बचाए रखने के लिए बच्चे के गले में बजर बट्टू (काले रंग के धागे में रुद्राक्ष, घुंघची, चाँदी का चन्द्रमा, ताँबे का सूर्य, रावटी, शेर का नाखून पिरो कर बनाई गई माला), हाथों की कलाई में और कमर में काली ऊन का बनाया गया धागा पहनाया जाता है।

४. अगर बच्चा रोता है, चीखता है, चौंकता है, दूध उलट देता है, हरे-पीले दस्त करता है तो उसकी माता गोधूलि वेला में गन्धक, चोकर, नमक, सात लाल मिर्च और झाड़ू का तिनका दाहने हाथ में लेकर रसोईं घर के चूल्हे की ओर पीठ करके खड़ी हो जाती है और दोनों हाथ में लिए हुए साधनों को बच्चे के ऊपर सात बार घुमाकर टाँगों के बीच से चूल्हे में फेंक देती है। इससे रोग-दोष, टोना, नजर, दीठ का शमन होता है।

५. बच्चा जब २ वर्ष का हो जाता है। घर से बाहर खेल कर जब आता है तो उसकी माँ घर से निकलते हुए बच्चे के सिर पर जमीन से

मिट्टी उठा कर सात बार उतार कर उस मिट्टी को लगा देती है, और फिर उसे नहलाती है या हाथ-पैर धो देती है। इससे नजर, दीठ का कुप्रभाव मिट जाता है।

६. अगर बच्चे को सूखारोग हो जाता है तो रात के बारह बजे चमेली के नीचे जाड़े में गर्म पानी, गर्मी में ठंडे पानी से बालक को स्नान करा दिया जाता है तो सूखा रोग दूर हो जाता है।

७. अथवा धोबी की भठ्ठी का एक लोटा पानी चुराकर घर में उसी में अन्य पानी मिला कर बच्चे को स्नान कराने से सूखारोग दूर होता है। स्नान किसी बड़े बरतन में बैठाकर कराया जाता है। स्नान का वह पानी चौराहे में छोड़ दिया जाता है।

८. इसके अतिरिक्त सूखारोग ग्रस्त बालक की पीठ पर रविवार और मंगल के दिन मकोय की पत्तियाँ चबाकर थूक दिया जाता है, फिर पीठ पर हाथ से जब मला जाता है तो सूखारोग के रोएँदार, भूरे रंग के छोटे-छोटे कीड़े ऊपर आ जाते है, उन्हें निकाल कर बाहर कर दिया जाता है। बच्चा नीरोग हो जाता है।

९. बच्चों के अलावा बड़े लोगों को जब कोई संक्रामक रोग हो जाता है या जलोदर, पीलिया, कण्ठमाला हो जाता है तो मिट्टी के एक शकोरे में एक अण्डा, एक लड्डू, दो पैसे और सिन्दूर रख कर मरीज के सिर पर सात बार उतार कर गोधूलि बेला में या दिन के १२ बजे चौराहे पर रख दिया जाता है। मरीज नीरोग हो जाता है।

१०. पहलवान लोग पैर में, गले में या हाथ में गुरु का दिया हुआ काले डोरे का गण्डा पहनते हैं। इसके अलावा उनके अखाड़े में अगर कोई बाहरी पहलवान लड़ने आता है तो चमेली के सात फूल सीने में और दोनों भुजाओं में लगाकर उन्हें अखाड़े के चारों कोनों में और अखाड़े के मध्य में गाड देते हैं तो उनकी ही विजय होती है।

११. जिन पुरुषों का विवाह काफी उम्र तक नहीं होता है, वे गुरूवार को कुम्हार के चाक को घुमाने वाले डंडे को चुरा कर घर ले

आते हैं और उसी दिन घर को लीप-पोत कर डंडे को लहंगा, चुनरी पहना कर उसको सिंदूर, महावर आदि लगा कर दुलहिन के रूप में एक कोने में खड़ा करके गुड़ चावल से पूजते हैं। इस तरह सात बार सात डंडे चुराकर पूजे जाते हैं। कुम्हार जितनी अधिक गालियाँ देगा, कोसेगा उतनी ही जल्दी विवाह होता है।

१२. और अविवाहित अधिक उम्र की कन्या का विवाह शीघ्र होने के लिए देवोत्थान एकादशी (कार्तिक शुक्ल पक्ष में) कच और देवयानी की मिट्टी की मूरतें बना कर उन मूर्तियों में ऐपन (हल्दी, चावल, आटा का पिसा हुआ घोल) लगाकर उनकी पूजा करके उन्हें एक लकड़ी के पटे से ढक देते हैं। फिर उस पटे पर कुमारी कन्या को बैठा दिया जाता है तो उसका विवाह हो जाता है।

१३. गरीबी, अभाव से मुक्ति पाकर धनवान बनने के लिए पहली बार ब्याई हुई काली बिल्ली की आँवर (जेर या खेड़ी) किसी प्रकार प्राप्त करके उसे सुखाकर रुपये रखने की थैली या संदूक, तिजोड़ी में रखा जाए। प्रत्येक मंगलवार को धूप दिया जाए तो धन, समृद्धि अनायास बढ़ती है।

१४. पीलिया रोग हो जाने पर काँसे के कटोरे में सरसों का तेल भर कर सात दिन तक रोगी को रोज दिखाने से रोग दूर हो जाता है।

१५. दाढ़ का दर्द होने पर लोहे की एक कील लेकर दाढ़ का स्पर्श करा कर किसी भी पेड़ में यह कहकर कि 'ले तेरा हमान सँभाल' कील को गाड़ दिया जाए तो दाढ़ का दर्द ठीक हो जाता है।

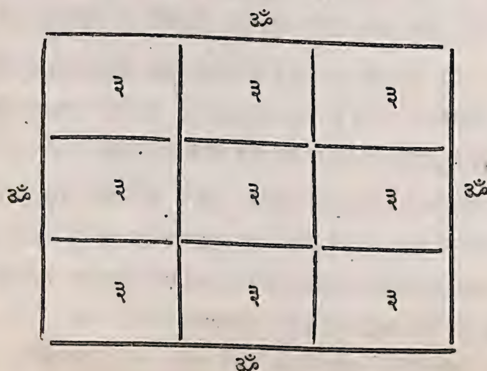
१६. शरीर पर चकत्ते निकल आएँ या दाग पड़ जाएँ तो जब भंगिन मलमूत्र की सफाई या घर, सड़क की सफाई कर रही हो तो उसका प्रगाढ़ आलिंगन किया जाए। भंगिन जितना अधिक बुरा-भला कहेगी, उतनी ही जल्दी रोग दूर होता है।

१७. एकान्तरा ज्वर (एक दिन छोड़ कर आने वाला ज्वर) जिसे

आता हो, जिस दिन ज्वर आने की पारी हो उस दिन वह अपनी लम्बाई के नाप का कच्चा सूत लेकर प्रातःकाल पीपल के वृक्ष के पास जाकर उसमें सूत को बाँधते हुए वह कहे—'मेरा मेहमान आए तो तुम सँभाल लेना। दूसरा प्रयोग मदार (आक) का भी है। ज्वर की पारी के दिन मदार के पास जाकर उसे भेंटते हुए कहे—'मेरे मेहमान का आज तुम्हारे घर निमंत्रण है।' बुखार फिर नहीं आता है।

संख्या-शब्द तंत्र

लोक-जीवन में टोटका, टोना की तरह जन्तर (यन्त्र) का भी विशेष महत्त्व है। ये यन्त्र गणितीय संख्याओं और शब्दों से बनाए जाते हैं। इन यन्त्रों का प्रभाव मन्त्रों से किसी क़दर कम नहीं होता है। तन्त्र-शास्त्र का एक अंग यन्त्र है, जिसे लोक-जीवन ने भी अपनाया है। मन्त्रों की रचना विधि शास्त्रीय है। लोक जीवन में दो प्रकार के यन्त्र प्रचलित हैं—एक लाभकारक और दूसरा हानिकारक। अधिकतर यन्त्रों के प्रयोग रोगों का शमन करने के लिए अथवा अपने घर की बला दूसरों के घर पहुँचाने के लिए किए जाते हैं। जैसे कोई आदमी बीमार है तो यंत्र बनाने वाला ओझा स्नान करके अपने देवता का ध्यान करके यह यन्त्र पीपल के पत्ते पर सिन्दूर से लिखता है—



यद्यपि ओझा लोग यह यन्त्र बनाकर रोगी को पहनाकर उसे रोग मुक्त करके प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, किन्तु उन्हें इस यन्त्र में गर्भित तात्विक विज्ञान का शायद ही बोध हो। वस्तुतः यह यन्त्र त्रितत्त्वों की समता की प्रार्थना का संसूचक है त्रितत्त्वों की प्रार्थना का बोधक ९ वर्गों में स्थित अंक ३ है। यन्त्र के तीन मध्य स्थानों पर ॐ का प्रयोग त्रितत्त्वों के प्रतीक के रूप में किया गया है और यन्त्राधिष्ठत देवता का आवाहन करने के लिए प्रणव रूप ॐ है।

बौद्धधर्मावलम्बी जनता में एक सामान्य व्यक्ति से लेकर आचार्य, महास्थविर और लामा तक सभी वर्ग के लोगों का कण्ठहार मन्त्र है—

ॐ ह्रीं मणिपद्मे हुम्

इस मन्त्र में ॐ प्रणव है। ह्रीं बीज है, मणिपद्मे मन्त्र है और हुम् पल्लव है।

यह मन्त्र बहुत ही चमत्कारिक और उच्चकोटि की सिद्धियां प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र की साधना करके लामा लोग सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हैं और जब वह चाहते हैं तभी मरते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग शुभ और अशुभ सभी कार्यों में क्रिया भेद से किया जाता है। इस मन्त्र के द्वारा लामा लोग एक वज्र दण्ड सिद्ध करके रखते हैं ऐसे सिद्ध लामा वज्रपाणि या वज्राचार्य कहलाते हैं। उनके द्वारा सिद्ध किए हुए दण्ड को यदि कोई छू लेता है तो वह मर जाता है।

इस मन्त्र की एक सरल साधना इस प्रकार है—

रात में या ब्राह्ममुहुर्त्त में किसी गुफा में या बंद कमरे में वज्रासन

से बैठकर दोनों हाथों को घुटने में रखे। हाथ खुले रहें।मुट्ठियाँ न बांधी जाएँ। मन ही मन इस मन्त्र का जप करते हुए दोनों भौंहों के बीच एक ज्योति का ध्यान किया जाए। ६० दिन की साधना के बीच ही अद्भुत चमत्कार देखने को मिलते हैं। इसके बाद घोर अन्धकार एक देदीप्यमान प्रकाश में परिणत हो जाता है, ज्यों-ज्यों साधना बढ़ती है, वैसे ही साधक को अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती जाती हैं।

तन्त्रसाधना सार पं० देवदत्त शास्त्री

